# सिद्ध योग

संस्थापक, सम्पादक तथा संरक्षक

**योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज**

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन; सथाई, आगरा

प्रकाशक

## इस अंक में


| लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १. हृच्चरणचिन्तैकशरणाः | | १ |
| २. योगी का आत्म-साक्षात्कार (हमारा विशेष लेख) | योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज | २ |
| ३. श्री गुरु गोरखनाथ की योग-वाणी | श्री डा० विजयसिंह | ६ |
| ४. सोवत नागिन जागी | श्री डा० विष्णुदत्त शर्मा | १२ |
| ५. आध्यात्मिक जगत एवम् श्री सद्गुरु तत्व | श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री | १७ |
| ६. ब्रह्म जिज्ञासा | श्री किशोरीलाल शास्त्री, | २१ |
| ७. मानव-जीवन का परम उद्देश्य | श्री डा० ऋषिराम शर्मा | २४ |
| ८. रीति रही है विधि के घर की (कविता) | श्री मधुप | २६ |
| ९. मृत्यु और उस पर विजय | श्री पं० केशवदेव शास्त्री | ३१ |
| १०. प्रभु एक बार (काव्य) | श्री राघवेन्द्र तिवारी | ३३ |
| ११. सिद्धयोगी महात्मा कबीर | श्री शिवरामसिंह सांगर | ३४ |
| १२. सद्गुरु का संगी और उसका कर्त्तव्य | ब्रह्मचारी श्री रघुराज सिंह | ४२ |
| १३. कुरुक्षेत्र में योग-प्रचार | श्री ब्रह्मचारी केशवदेवजी | ४५ |
| १४. पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम् | संकलित | ४८ |



संयुक्त सम्पादक
दिव्य

फोन ६२१६८

# सिद्ध योग

वर्ष ८
अङ्क ५

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्धं स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुखविवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः ।
तत्प्राप्त्यर्थं महितविशदं योगशास्त्रोपदेशात्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥

अगस्त
१९७५


## हरचरणचिन्तैकशरणाः ।

—※※※—

वितीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः
स्मरन्तः संसारे विगुणपरिणामां विधिगतिम् ।
वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्रकिरणा-
स्त्रियामा नेष्यामो हरचरणचिन्तैकशरणाः

अर्थात्—अपना सर्वस्व याचकों को बांटकर करुणापूर्ण हृदय होकर और संसार में विगुण परिणामवाली दैवगति को स्मरण करते हुए हम पवित्र तपोवन में भगवान् शंकर के चरणों की शरण लेकर शरदृतु की चाँदनी की रात कब व्यतीत करेंगे ?

हमारा विशेष लेख :—

# योगी को आत्म-साक्षात्कार

[ योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ]

—❀❀❀—

संसार के उपासक सदा सर्वदा आत्म-साक्षात्कार के लिये प्रयत्नशील रहा करते हैं। आत्म-साक्षात्कार अर्थात् श्री पतञ्जलि जी की परिभाषा में साधक को पौरुषेय ज्ञान किस प्रकार से ज्ञात होता है यह बहुत ही गहन एवं विचारणीय विषय बन जाता है। हमारा शास्त्रीय सिद्धांत है :

**विज्ञातारमरे केन विजानीयात् ।**

अर्थात् जो स्वयं ज्ञाता है अपने आपको अपने आप ही जानता है उसको किस साधन से जाना जाय। पुरुष को जानने का यदि प्रयत्न किया जाता है तो उसका अर्थ यह समझ लेना चाहिये कि ज्ञेय वस्तु कोई भिन्न है और जानने का इच्छा वाला कोई और है। जहां पर ज्ञाता और ज्ञेय एकत्व में भासित हो रहे हैं वहां पर जानने योग्य कौन है और किस साधन से उसको जाना जाय भगवान पतञ्जलि देव उस विषय को समझा कर पुरुष ज्ञान का प्रकार लिखते हैं। अभ्यास करने वाले साधक को ज्ञाता और ज्ञेय के अर्थ को अपनी बुद्धि के सामने रख लेना चाहिये। जो साधक ज्ञाता और ज्ञेय के ज्ञान को भली प्रकार से समझ कर विशुद्ध बुद्धि सत्त्व को संयम की ओर लगाने की चेष्टा करेंगे वही पौरुषेय ज्ञान की ओर अग्रसर हो सकते हैं। पढ़िये श्री पतञ्जलि जी के शब्दों में पुरुष ज्ञान का प्रकार :—

**सत्त्व पुरुषोयारत्यन्ता सङ्कीर्णयोः प्रत्ययाविशेषोभोग परार्थत्वात् स्वार्थ संयमात् पुरुषज्ञानम् ।**

अर्थात् बुद्धि और आत्मा ये दोनों अत्यन्त भिन्न हैं किन्तु इनका एकत्व बोध ही भोग कहलाता है। बौद्धेय ज्ञान को छोड़कर पुरुष ज्ञान रूप सत्त्व में संयम करने से योगी को आत्म-साक्षात्कार हुआ करता है। इन्हीं भावों का स्पष्टीकरण करते हुए श्री व्यासदेव जी महाराज अपने भाष्य में जो पंक्तियें लिखते हैं उनको पढ़िये :—

**बुद्धि सत्त्वं प्रख्याशील समान सत्त्वोपनिबन्धने रजस्तमसी वशीकृत्य सत्त्व-पुरुषान्यता प्रत्ययेन परिणितम्। तस्माच्च सत्त्वात्परिणामिनोऽत्यन्तविधर्मा विशुद्धोऽन्यश्चितिमात्र रूपः पुरुषः। तयोर-रत्यन्ता संकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः**

पुरुषस्य दर्शित विषयत्वात्। स भोग प्रत्ययः सत्त्वस्य परार्थत्वाद् दृश्यः।

यस्तु तस्माद्विशिष्टश्चिति मात्र रूपोऽन्यः पौरुषेयः प्रत्ययस्तत्र संयमात्पुरुष विषया प्रज्ञा जायते। न च पुरुष-प्रत्ययेन बुद्धि सत्त्वात्मना पुरुषो दृश्यते पुरुष एव तं स्वात्मावलम्बनं पश्यति। तथा ह्युक्तम् विज्ञातारमरे केन विजानीयात्" इति॥

अर्थात् रज तम से रहित विवेक ज्ञान पूर्ण प्रत्याशी बुद्धि सत्त्व और चिति स्वरूप पुरुष का ज्ञान इन दोनों का ज्ञान भिन्न-भिन्न होने पर भी अभेद सा दीखता रहता है क्योंकि पुरुष बुद्धि का प्रति संवेदी है। प्रति संविद रूप ज्ञान को खत्म करके प्रकाश रूप बुद्धि सत्त्व की पुरुष जब अपनी चेतना का अधिष्ठान बनाता है तभी वह स्वार्थ संयम करता है। स्वार्थ संयम से आत्म साक्षात्कार की अनुभूति होती है।

इस विषय को इस प्रकार समझ लेना चाहिये। साधन पाद के बीसवें सूत्र में द्रष्टा जीवात्मा का लक्षण इस प्रकार लिखा है :

द्रष्टा दृशिमात्र शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः।

अर्थात् द्रष्टा जीवात्मा दृक्शक्ति मात्र शुद्ध है इतना होने पर भी बुद्धेः प्रति संवेदी होने के नाते वह प्रत्ययानुपश्य है। बौद्धेय ज्ञान को देखता है इसलिये तब तक पूर्ण शुद्ध नहीं कहा जा सकता जब तक कि वह बौद्धेय बोध से दूर न हो जाय। यही योग दर्शनकार भगवान पतञ्जलिदेव का लक्ष्य है। उन्होंने कैवल्य मुक्ति का स्वरूप प्रकृति और पुरुष के शुद्धि साम्य को बतलाया है। शुद्धि साम्य का अर्थ है जीवात्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाय और गुणों का गुणों में अवस्थान हो जाय तभी दृक्शक्ति अपरिणामिनी, अप्रति संक्रमा केवली भाव को प्राप्त हुई दिखाई दे सकती है। बुद्धि बोध से आक्रान्त आत्मा ही प्रत्ययानुपश्य दिखलाई देता है। इसीलिये भगवान पतञ्जलिदेव ने "द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः" कह कर के आत्मा का शुद्ध होने पर भी बुद्धेः प्रति संवेदित्व कह कर के आत्मा की केवली भाव से पूर्व की स्थिति का रूपक समझा दिया। देखिये इस सूत्र पर व्यास भाष्य की पंक्तियाँ :

दृशिमात्र इति=दृक्शक्तिरेव विशेषणापरामृष्टेत्यर्थः, स पुरुषो बुद्धेः प्रति संवेदी स बुद्धेर्न सरूपो नात्यन्तं विरूप इति, न तावत्सरूपः कस्माद्? ज्ञाताज्ञात विषयत्वात्, परिणामिनी हि बुद्धिः, तस्याश्च विषयो गवादिर्घटादिर्वा ज्ञातश्चाज्ञातश्चेति परिणामित्वं दर्शयति, सदाज्ञात विषयत्वन्तु पुरुषस्यापरिणामित्वं परिदीपयति, कस्माद्? न हि बुद्धिश्च नाम पुरुषविषयश्च स्याद् गृहीताऽगृहीता चेति सिद्ध पुरुषस्य सदा ज्ञातविषयत्वम्। ततश्चापरिणामित्वमिति,

किञ्च परार्था बुद्धिः संहत्य कारित्वात्, स्वार्थः पुरुष इति तथा सर्वार्थाध्यवसाय-कत्वात्, त्रिगुणा बुद्धिः त्रिगुणत्वादचेतनेति, गुणानां तूपद्रष्टा पुरुष इति, अतो न सरूपः अस्तु तर्हि विरूप इति, नात्यन्तं विरूपः, कस्मात्? शुद्धोऽप्यसौ प्रत्ययानुपश्यो, यतः प्रत्ययं बौद्धमनुपश्यति, तमनुपश्यन्नतदात्माऽपि तदात्मक इव प्रत्यवभासते, तथा चोक्तम् 'अपरिणामिनी हि भोक्तृशक्तिरप्रति संक्रमा च परिणामिन्यर्थे प्रतिसंक्रान्तेव तद्वृत्तिमनुपतति तस्याश्च प्राप्तचैतन्यो पग्रहरूपाया बुद्धि वृत्तेरनुकार मात्रतया बुद्धि वृत्त्यविशिष्टा हि ज्ञानवृत्तिरित्याख्यायते।

अर्थात् आत्मा किसी विशेष ज्ञान से अपरामिष्ट शुद्ध है किन्तु बुद्धि प्रतिसंवेदी होने के कारण जो बुद्धि के अत्यन्त सरूप और न हि अत्यन्त विरूप ही है क्योंकि बुद्धि ज्ञाताज्ञात विषया परिणामिनी है क्योंकि उसका गवादि एवं घटादि का ज्ञान ज्ञाता ज्ञातविषयत्व एवं परिणामित्व दिखलाता है और पुरुष सदाज्ञाता होने के नाते से उसका अपरिणामित्व प्रकट होता है और बुद्धि हमेशा पुरुष विषयक न रहने से गृहीत गृहीता है इसलिये पुरुष का सदाज्ञात विषयत्व सिद्ध हो गया और अपरिणामित्व भी सिद्ध हो गया। बुद्धि हमेशा परार्था है, त्रिगुणात्मिका है। क्योंकि बुद्धि पुरुष के साथ मिलकर ही काम कर सकती है इसलिए वह परार्था कहलाती है। अर्थात् बुद्धि जीवात्मा का अपना स्वार्थ है। इसलिए सभी अर्थों का निश्चय करना बुद्धि का धर्म है। अतः वह त्रिगुणात्मिका है। त्रिगुणात्मिका होने के नाते वह जड़ है। और पुरुष गुणों का ज्ञाता होने के कारण बुद्धि में सरूप नहीं है। अब प्रश्न यह पैदा होता है क्या पुरुष बुद्धि के विरूद्ध एवं भिन्न है। इसका उत्तर इस प्रकार देते हैं। कि अत्यन्त विरूप भी नहीं क्योंकि :

"शुद्धोऽप्यसौ प्रत्ययानुपश्य"

अर्थात् जीवात्मा परम शुद्ध होने पर भी बौद्ध व ज्ञान को देखता है। इस लिए बुद्धि वृत्तियों को देखता हुआ आत्मा भी बुद्धि वृत्तियों के अनुरूप ही होता है। इसीलिए यह कहा गया है :

अपरिणामिनीहिभोक्तृ शक्ति अप्रतिसंक्रमाच्च।

अर्थात् भोगने वाली शक्ति सदा अपरिणामिनी दृश्य के रूप में बदलने वाली नहीं है। परिणाम के रूप में जब बुद्धि वृत्ति पदार्थ के आकार वाली बनती है वह इसका परिणाम है। किन्तु आत्मा के अन्दर ऐसा कोई परिणाम नहीं है वह नित्य चेतन शुद्ध स्वरूप केवल मात्र द्रष्टा है। इस विषय को एक उदाहरण के साथ समझ लेना चाहिए। आत्मा और बुद्धि के रूप को इस प्रकार समझा जा सकता है। जैसे एक सुन्दर साफ शीशा सामने रक्खा जाये और उसके अन्दर लाल-पीले-हरे पुष्पों के

चित्र डाले जांय तो वह शीशा विकारी नहीं होता जब तक फूल सामने है। तब तक वह विकारी दिखाई देता है। यदि फूल सामने से हटा दिये जांय तो शीशे के अन्दर न कोई विकार रहता, न वे फूल ही दिखाई देते हैं। इसी प्रकार से आत्मा एक निर्मल ज्योति है। नित्य चेतन शुद्ध शक्ति है। उसके प्रकाश को पाकर जड़ बुद्धि चेतन हो उठी। आत्मा ने बुद्धि का यह उपकार किया है कि बुद्धि को चेतनता दे दी। चेतन हुई उस बुद्धि ने आत्मा का प्रत्युपकार किया उस प्रत्युपकार में बुद्धि ने अपना गुणात्मिका रूप आत्मा को दिखला दिया जिससे आत्मा को बौद्धिक ज्ञान सुख दुःखादि की अनुभूति होने लगी यही हृदय ग्रन्थि कहलाती है। अर्थात् जड़ चेतन की गांठ कहलाती है। अतः आत्मा बुद्धि के न सरूप है न अत्यन्त विरूप है। आत्मा शुद्ध होने पर शुद्ध होने के नाते बुद्धि के बिलकुल विरूप है। किन्तु शुद्धः प्रति संवेदी होने के नाते से बुद्धि के लिए सरूप सा भासित होता है। इसलिए भगवान पतंजलि देव ने पुरुष ज्ञान के लिए स्वार्थ संयम का उपदेश दिया। सूत्र ऊपर लिख चुके हैं। फिर पढ़ लीजिए :

सत्त्व पुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात् स्वार्थ संयमात् पुरुषज्ञानम्।

अर्थात् प्रकृति और पुरुष अत्यन्त भिन्न है इनका प्रत्यय विशेष ही भोग है। परार्थ होने के नाते वे जिस समय अभ्यासी स्वार्थ संयम करता है तो बुद्धि के जितने पदार्थ भोग हैं वे सब खत्म हो जाते हैं। इस बात को इस प्रकार समझ लेना चाहिए। अभी हमारी बुद्धि वृत्ति परिणामिनी होने के कारण विविध प्रकार के घट पटादि के ज्ञानों को अपने अन्दर धारण करती रहती है और उसके वे ज्ञान घट के बाद पट, पट के बाद घट क्षण-क्षण में बदलते रहते हैं। गुणात्मिका होने के कारण तम की प्रधानता में जड़त्व और रज की प्रधानता में चलत्व आदि के परिणाम होते रहते हैं। बुद्धि में स्थिरता केवल मात्र सतोगुण के के ही प्रभाव से आ पाती है। सतोगुण आत्मा के निकट का आवरण है। ज्यों-ज्यों साधक रजोगुण तमोगुण की खाइयों को पार करके सतोगुण के निकट पहुँचता है त्यों त्यों उसमें आत्मिक तेज आभासित होने लगता है। बुद्धि स्थिरता को प्राप्त होती है। मन में शान्ति झलकने लगती है। ज्यों-ज्यों साधक समाधि योग का अभ्यास करता है। त्यों-त्यों संप्रज्ञात समाधि की वितर्कानुगत-विचारानुगत एवं आनन्दानुगत तीन श्रेणियों को पार कर पाता है बाद में वह स्वतः ही उस परम गुरु परमात्मा की कृपा से अस्मितानुगत योग में प्रवेश कर पाता है अस्मितानुगत में प्रवेश कर जाने के बाद उसको स्वतः ही ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रगट हो जाती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा का अर्थ ही है कि ऋतं-सत्यं-बिभर्ति या सा ऋतंभरा यह बुद्धि इस प्रकार की होती है जिसमें सत्य ही सत्य भासित होता है। इस बुद्धि के पैदा हो जाने पर परार्थ मनन-मूल्य करने वाली सभी बुद्धि वृत्तियें अपना कार्य समाप्त करके स्वयं भी

खत्म हो जाया करती है। ऋतंभरा प्रज्ञा को प्राप्त हुआ साधक संप्रज्ञात समाधि के अन्तिम परिणाम स्वरूप अस्मि प्रत्यय को प्राप्त होता है। इस अस्मि प्रत्यय को ही निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहते हैं। यही वृत्ति (आत्म साक्षात्कार) के निकट की वृत्ति है। पुरुष के अपने तेज से ये बुद्धि वृत्ति चमकती है। साधक अनुभव करता है। अस्मि-अस्मि अहमेवास्मि अर्थात् यह सब कुछ मैं ही हूं। ऐसी बुद्धि वृत्ति के पैदा हो जाने पर जब योगी संयम करता है उसी संयम को स्वार्थ संयम कहते हैं भगवान पतंजलिदेव के उपरोक्त सूत्र में स्वार्थ संयमात् पुरुषज्ञानम् का अर्थ यही है जितने अभी तक संयम किये थे, वह सबके सब परार्थ ज्ञान के संयम थे, किन्तु अस्मि प्रत्यय के साथ यह संयम स्वार्थ संयम कहलाता है। इस संयम को दृढ़ता के साथ करता हुआ योगी पूर्ण रूपेण आत्म साक्षात्कार कर लेता है। स्वार्थ संयम ही आत्म साक्षात्कार का प्रमुख साधन है।

# श्री गुरु गोरखनाथ की योग-वाणी

[ श्री डा० विजय सिंह एम०एस सी० पी एच० डी० 'गणित']

षट-चक्रों की साधना सम्बन्धी योगानुभूतियों का वर्णन साधारणतया गुप्त ही है। आभ्यान्तरिक अनुभूतियों को योगी लोग सदैव से गोप्य एवं रहस्य युक्त रखते चले आ रहे हैं। षट-चक्रों के गहन रहस्य की बातों को यदि कहीं वर्णित भी किया गया है तो सिद्ध योगियों ने वहां रहस्यवादी-वाणी का ही प्रयोग किया है। यथार्थ में योगानुभूतियां गूंगे के गुड़ समान अनुभूति का विषय है। साधना काल में साधक को तत्र-तत्र अनुभूत विषयों की चर्चा न करने की कड़ी चेतावनी दी गयी है। इसके दो कारण तो प्रत्यक्ष ही हैं। प्रथम तो अनाधिकारी व्यक्ति से चर्चा करने पर उसके मन में उत्पन्न सन्देह का भाव स्वयं साधक के मानस-भाव में विकार का कारण बन जाता है। दूसरी बात है कि यदि ऐसा न भी हो तो अहंकार या स्वयं को अनूठे होने का बोध साधक के साधन का संहार करता है। इसी हेतु परम मनस्वीयों ने योगानुभूति रूपी गहन विषयों को अन्तःकरण में ही सम्भाल कर रखने का आदेश दिया है। सागर पीकर भी ओठ सूखे रहें। अर्थात् संसारी लोग योग खजाने की झलक भी न पा सकें। श्री गोरखनाथ जी ने रहस्यवाद का प्रयोग कर निम्नांकित रचनाओं द्वारा योग-साधना जनित अलौकिक अनुभूतियों में से कुछ प्रमुख तथ्यों का वर्णन गोरख बानी में किया है।

श्री गोरख श्री के नाथ-पंथ में मूल रूप से

कुण्डलिनी योग या 'हठयोग' के साथ मन एवं प्राण साधना पर जोर दिया गया है। साधारण तथा नाथ-पंथ का योग हठयोग के नाम से प्रसिद्ध है। "हठयोग-प्रदीपिका" में हठयोग का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

**"हश्च ठश्च हठौ सूर्यचंद्रौ, तयोर्योगो हठयोगः। एतेन हठशब्द वाच्योः सूर्य चन्द्राख्यो प्राणापानयोरैक्य लक्षणः प्राणायामो हठ हठयोग इति हठयोगस्य लक्षणं सिद्धम्।**

'ह' का अर्थ है सूर्य, 'ठ' का अर्थ है चन्द्र इस प्रकार सूर्य और चन्द्र के योग को हठयोग कहा गया है। कुछ लोग सूर्य और चन्द्र से प्राण और अपान का अर्थ लेकर हठयोग से "प्राणापान ऐक्यरूप" प्राणायाम मानते हैं।

श्री गोरखनाथ जी की वाणियों की जानकारी करने से पूर्व साधना पद्धति को जान लेना उचित होगा। योगमतानुसार मेरुदंड में नीचे से ऊपर की ओर छह चक्र हैं। जिन्हें क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा चक्र नाम दिया गया है। इनका आकार भिन्न-भिन्न संख्या के दलों वाले कमल-पुष्पों जैसा होता है। इन सबके ऊपर शरीर के सर्वोच्च भाग में सहस्रार नामक चक्र है। मूलाधार चक्र से नीचे मेरुदंड के सबसे निम्नतम भाग में एक सुप्त अवस्था में शक्ति की कल्पना की गयी है। योगानुभूति द्वारा इसका आकार वर्णन साढ़े तीन फेरों में बैठी हुयी सर्पिणी बताया गया है। इसका नाम कुण्डलिनी है। साधना द्वारा यदि वायु को विपरीत प्रवाह देकर प्राणायाम करें तो उससे उत्पन्न आघात एवं गर्मी से जाग्रत होकर यह कुण्डलिनी मेरुदंड के भीतर वाले छह चक्रों को क्रमशः बेधती हुयी तथा इन चक्रों को ऊर्ध्वमुखी बनाती हुई ऊपर उठकर सहस्रार में लीन हो जाती है। इसके परिणाम स्वरूप मानव मन की सुप्त शक्तियां प्रकट हो जाया करती हैं। मन स्वतः स्थिर हो जाता है। कुण्डलिनी का सहस्रार में लीन होना ही अखण्ड समाधि है।

योग के अन्तर्गत स्वाध्याय का अपना एक प्रमुख स्थान है। स्वाध्याय से अन्तरानुभूति की प्रक्रिया सिद्धों, देवताओं की अनुकम्पा से स्वतः शुरू हो जाया करती है। मन्त्र का जप प्रमुख स्वाध्याय बताया गया है। नाथ-पंथ में "अजपा जाप" की प्रधानता सिद्ध है। अजपा जाप को सहज जाप का भी नाम दिया गया है। इस अनोखी जाप विधि में स्पष्ट या अस्पष्ट नामोच्चारण, माला फेरना, इत्यादि बातें न होकर मन्त्र की धारणा श्वास-प्रश्वास में की जाती है। जिससे थोड़े दिन में वह स्वतः अन्तः क्रिया का रूप ले लेता है। नाथ-पन्थ में 'सोऽहम्' रूपी अजपा जपा जाता है। जिससे 'सोहम्' शब्द ज्योति में परिवर्तित होकर शून्य के अन्धकार को दूर कर देता है। आगे परमतत्व को भी प्रकाशित कर देता है। इस जप के द्वारा साधक शिव तथा शक्ति

के सम्मिलन की स्थिति का अनुभव प्राप्त कर लेता है। अजपा जप किसी अनभ्यस्त साधक द्वारा सफल नहीं होता है। यह सदा सिद्ध सद्गुरु की कृपा प्रसाद के फलः स्वरूप साधक के मन में अपना स्थान बना लिया करता है।

अजपा जप के फलः स्वरूप साधक "अनहद नाद" श्रवण करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। यह ध्वनि मानव शरीर में स्वतः ध्वनित होती रहा करती है। 'नाद' मानव-शरीर के अन्तर्गत वस्तुतः उस ध्वनि का बोधक है जो ब्रह्माण्ड का कारण है। मानव मन साधारण रूप से सर्वाधिक है। बाह्य विषयों के व्यापार में लगा होने के कारण इस अलौकिक शब्द को सुन नहीं सकता। परन्तु कुण्डलिनी के जाग्रत होने पर जब सुषुम्ना द्वार खुल जाता है उस समय प्राण वायु सुषुम्ना में प्रवेश करता है। सुषुम्ना के मार्ग में ही उपरोक्त कथित सभी पदम् चक्र हैं। वे क्रमशः चार, छह, दस, बारह, सोलह तथा दो दलों से संपन्न क्रमशः पुष्पों के रूप में देख पड़ते हैं। प्राण-वायु के क्रमशः उपर चक्रों में प्रवेश पाने पर समुद्र या मेघ गर्जन जैसी ध्वनि सुनाई पड़ती है। फिर भेरी, शंख, घंटा आदि तथा क्रमगत साधना के साथ पुनः किंकिणी, वंशी, वीणा अथवा भ्रमर गुंजन-जैसी मधुर ध्वनियां सुनाई पड़ती हैं यह नाथ-सम्प्रदाय का अनभूत विषय है। आज्ञा चक्र के पश्चात् प्राण एवं मन का नाद में विलय हो जाता है। नाथ-पंथ में सहस्रदल कमल के मध्य स्थित चन्द्राकार बिन्दु बताया गया है। इससे एक प्रकार का मन्द स्राव होता रहता है जिसे 'अमृत' कहते हैं। यह उपर से चूकर निम्न तल मूलाधार के निकटवर्ती स्थल सूर्याकार कुण्ड में गिरकर सूख जाता है। यदि खेचरी या अन्य यौगिक विधि से इस अमृत तत्व को उपर ही रोक कर रसास्वादन किया जाय तो इसके फलः स्वरूप अमरत्व प्राप्त होता है। यह अभ्यास द्वारा निम्न स्थित सूर्य को चन्द्र तक लाकर दोनों का सम्मिलन कराने से सम्भव होता है। इसी को नाद में बिन्दु का मिलन कहा गया है। श्रीगोरखनाथ जी ने बताया है कि—जब अमृत स्राव ऊपर ही रुक जाता है तथा उसके निरन्तर स्राव होते रहने के कारण अमावस के चन्द्र सा मलिन यह चन्द्र भी जब सूर्य के संयोग से पूर्णिमा की तरह झिलमिलाने लगता है, ऐसी दशा में नाद में बिन्दु का भी समावेश हो जाता है। और अनहद नाद की तुरी बजने लग जाती है। तब साधना कृत-कृत्य हो जाता है।

**अमावस कै घरि झिलमिलि चन्दा,**
**पूनिम के घरि सूर।**
**नाद के घरि ब्यंद, गरजै,**
**बाजंत अनहद तूर॥**

—गोरखबानी पृष्ठ २०

नाथ-पंथ में समाधि का पर्यायवाची शब्द कहीं-कहीं उन्मनि शब्द से किया गया है। यह शब्द उस अवस्था का द्योतक है जब पूर्णब्रह्म

मन एवं प्राण का एकीकरण हो जाता है। इस प्रकार की व्याख्या हठयोग प्रदीपिका में की गयी है—

**राजयोगः समाधिश्च उन्मनी च मनोन्मनी।**

इस अवस्था में मन पूर्णतया निर्विषय हो चुका होता है। श्री गोरखनाथ जी को मानव मन का तात्त्विक ज्ञान प्राप्त था। अतः उन्होंने मन की साधना पर विशेष ध्यान दिया है। गोरखबानी से स्पष्ट पता चलता है कि उन्मनी अवस्था प्राणों को नियमन करके अपने वश में कर लेने पर प्राप्त होती है। इस अवस्था में ब्रह्मरंध्र में सूर्य एवं चन्द्रमा के बिना ही प्रकाश होता है तथा अनहद नाद के तुरी सुनाई पड़ती है। गोरखबानी संख्या ५२ में बताया गया है कि—कुम्भक द्वारा वायु भक्षण करके नवों द्वारों को रोक देने तथा छह मास में कायाकल्प करते रहने से साधक को यह उन्मनी अवस्था की उपलब्धि होती है। इस अवस्था में सूर्य तथा चन्द्र का संयोग होता है। उन्मनी को सोऽहमस्मि की अवस्था ही समझना चाहिए। यह अवस्था अजपा जाप द्वारा गुरु कृपा से सहज ही उपलब्ध हो जाया करती है।

नाथ-पंथ में गगन और शून्य शब्द देश-काल से परे ब्रह्म वाचक तथा कहीं-कहीं ब्रह्मरंध्र के लिये किया गया है। इसके साथ नाद का भी समावेश किया गया है जैसे—

**बसती न सुन्य-सुन्य न,**
**बसती अगम अगोचर ऐसा।**
**गगन सिषर महिं बालक बोलै,**
**ताका नाम धरहुगे कैसा॥**

—गोरखबानी पृ० १

आगे शून्य ही को सृष्टि का मूल कारण माना है। देखें—

**सुंनि ज माईं सुंनि ज बाप।**
**सुंनि निरंजन आपै आप॥**
**सुंनि कै परचैं भया सथीर।**
**निहचल जोगी गहर गम्भीर॥**

अब यहाँ पुनः नाद और बिन्दु को संक्षिप्त रूप से समझ लेना चाहिये। नाद और बिन्दु को योगानुभव द्वारा योगियों ने सृष्टि का मूलतत्त्व ठहराया है। 'नाद' वह तत्व है जिसके द्वारा अव्यक्त व्यक्त रूप हुआ तथा सृष्टि क्रम आगे बढ़ा। वही नाद मानव शरीर के अन्दर व्यष्टि रूप से सदैव विराजमान है। जिसकी अनुभूति योग साधना द्वारा उच्च अवस्था में होती है। नाद से ज्योति का आविर्भाव होता है। यह नाद स्वयं शिव है। दूसरी ओर बिन्दु शक्ति का परिचायक है। जिसे शिव के साथ समागम स्थिति प्राप्त कराना प्रत्येक साधक का अभीष्ट समझा गया है। बिंदु को बीज-तत्व भी कहा गया है। इसी अर्थ में इसे वीर्य का पर्याय माना जाता है। बिंदु की साधना ब्रह्मचर्य से इसी हेतु सम्बन्धित बताया गया है।

श्री गोरखनाथ जी कायासाधन की दृष्टि कोण से बिंदु साधना या ब्रह्मचर्य साधना को अपूर्व महत्व दिया है। नाथ जी कहते हैं—

नाद नाद सब कोई कहैं।
नादहि ले को बिरला रहै॥
नाद बिंद है फीकी सिला।
जिहि साध्या ते सिधैं मिला॥

अर्थात्—नाद में लयता किसी बिरले को ही प्राप्त होती है। परन्तु जो इसे साध लेता है वह सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार बिंदु साधना के लिये कहा गया है।

ब्यंद-ब्यंद सबकोइ कहै।
महा ब्यंद कोइ बिरला लहै॥
इह ब्यंद भरोसे लावै बंध।
असथिरि होत न देखो कंध॥

नाद एवं बिन्दु का मिलन ही परम योग की अवस्था है। इस अवस्था को निरंजन नाम दिया गया है। जो मात्र गुरु कृपा से ही प्राप्त होता है। स्वयं श्री गोरखनाथ जी ने कहा है—

मछिंद्र प्रसादैं जती गोरख बोल्या।
निरंजन सिधि नै थानं॥

गो० बा० पृ० १११

आगे निरञ्जन शब्द से निर्गुण ब्रह्म का बोध किया गया है।

इन सब योगानुभूति परक शब्दों के साथ-साथ श्री गोरखनाथ जी ने सहज अवस्था को वह अवस्था माना है। जब साधक को ब्रह्मरन्ध्र में महाप्रकाश स्वतः प्रकाशित जो है, सहज आनन्द रूप से सदैव अनुभव होने लगता है।

जिहि घर चन्द सूर नहि उगै,
तिहि घरि होसि उजियारा।
तिहां जे आसण पूरौ तौ,
सहज का भरी पियाला मेरे ग्यानी।

गो० बा०, पृ० ६०

इसी प्रकार 'मछीन्द्रगोरख बोध' के निम्न उद्धरणों से 'सुरति' 'निरति' का भाव स्पष्ट हो जाता है :

अवधू सबद अनाहद सुरति सुचित।
निरति निरालंभ लागै बन्ध॥
दुंदुबध्या मेटि सहज मैं रहै।
ऐसा बिचार मछिंद्र कहै॥

सुरति शब्द सुचित अर्थात् नादोन्मुख चित्त की दशा को सूचित करता है वहाँ 'निरति' उस दशा को प्रकट करता है जो निरवलंब की स्थिति है।

इसी भाव को प्रकट सिद्ध कबीर अपने बीजक में किये हैं—

सुरति निरति परचा भया,
तब खुले स्वयंभू दुवार।
सुरति समांणी निरति मैं,
अजपा माँहैं जाप॥
लेख समाणा अलेख मैं,
यूं आपा माँहैं आप॥

क० ग्रं० पृ० १४

श्री गोरखनाथ जी अपनी योगानुभूतियों को रहस्यमयी वाणी में ही वर्णन किया है। जिनके गहन अर्थ को साधना युक्त एवं सद्गुरु कृपा पात्र साधक अपने आभ्यान्तरिक अनुभव द्वारा ही ठीक-ठीक जान सकता है। कहीं कहीं उलटबांसी के रूप में योग रहस्य वर्णन किये हैं। यहां अर्थ सामान्य अर्थ से बिल्कुल विपरीत प्रतीत होता है। देखिए प्रथम योगानुभव वर्णन—

नींझर झरणैं अंमीरस,
पीवणां षटदल वेध्या जाई।
चन्द विहूँणां चांदिणां,
तहां देष्या श्री गोरष राई॥

एक स्थल पर श्री गोरखनाथ जी का कहना है कि तत्व की बेलिशरीर कुंज के भीतर स्थित वाटिका में सद्गुरु द्वारा रोपी गयी है। इसकी सिचाई पुरुष (पवन) किसान किया करता है। वही उसके सुन्दर फल भी घर लाता है। उस बेल का जड़ ऊपर (सहस्रार) में है और उसके पत्रादि नीचे की ओर फैले हुये हैं। इस बेल में जिस समय भव की आग लगती है और ज्वाला जब ऊपर पहुँचती है। उस समय इसकी शाखायें कोंपलें देती हैं। (तृष्णादि के बढ़ने पर मानव मन अनेक उलझन का शिकार बन जाता है।) यह बेल काटने पर भी कोंपले देती है, किन्तु सींचने पर कुम्हलाने लगती है। इत्यादि—

तत बेली लो तत बेली लो,
अवधू गोरखनाथ जाणीं।
डाल न मूल पहुप नहीं छाया,
बिरधि करै बिन पाणीं॥
काया कुंजर तेरी बाड़ी अवधू,
सतगुरु बेलि रुपाणीं।
पुरिष पाणती करै षणियाणीं,
नीकै बालि घर आणी॥
मूल पड्या जेढ़ा ससिहर अवधू,
पांन पड्या जेढ़ा भांणं।
फल पड्या जेढ़ा पुनिम चन्दा,
जोउ जोउ आणं सुजांणं॥
बेलड़ियां दौ लागी अवधू,
गगन पहूंती झाला।
जिम-जिम बेलि दाझवा लागी,
तब मेल्है कूंपल डाला॥
काटत बेलि कूंपल मेल्ही,
सींचतड़ां कुमलाये।
मछिंद्र प्रसादैं जती गोरख,
बोल्या नित नवेलड़ी थापे॥

हठयोग प्रदीपिका में भी उलटी अर्थों वाला श्लोक पाया जाता है जिसमें अनुभूति-विषय रहस्यमय ढंग से वर्णित किया गया है। उदाहरणार्थ—

गंगायमुनायोऽर्मध्ये,
बाल रंडा तपस्विनी।
बलात्कारेण गृह्णीयात-
द्विष्णोः परमं पदम् ॥

इसी प्रकार गुरु गोरखनाथ की 'उलटी चरचाएँ' भी अत्यन्त अद्भुत हैं।

डूंगरि मंछा जलि सुसा,
पाणी मैं दौ लागा।
अरहट बहै तृसालवां,
सूलै काटा भागा ॥

मछली पहाड़ पर पहुँच जाती है और खरहा जल में मिल जाता है। पानी में आग लग जाती है जिसके फलः स्वरूप तृषालु व्यक्तियों के लिये रहट बहने लगती है और शूल से कांटा निकल कर नष्ट हो जाता है।

इस तरह की बहुत सी रचनायें हैं। परन्तु इनका यथार्थ ज्ञान तो 'भाव पूर्ण विवेक के जाग्रत होने पर एवं सद्गुरु कृपा से अध्यात्म राज्य के प्रत्येक अंगों का ज्ञान होने पर ही सम्भव है।

# सोवत नागिन जागी

[ श्री डा० विष्णुदत्त शर्मा, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी ]

लौकिक दृष्टिकोण से श्री कबीर को एक भक्त एवं समाज सुधारक के रूप में अधिक ख्याति प्राप्त है। परन्तु यौगिक रहस्यवाद की दृष्टि से भी कबीर योग की गुह्यतम अनुभूतियों एवं साधना रहस्यों के पूर्ण ज्ञाता प्रतीत होते हैं। इसी दृष्टि कोण से कबीर के आत्म-दर्शन सम्बन्धी रचनाओं की पृष्ठि भूमि से हम यहां उनके हठयोग विषयक अनुभवों का वर्णन कर रहे हैं। आत्मसाक्षात्कार के अनेकों साधन हैं, बृहदारण्यकोपनिषद में कहा गया है :

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो,
मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः।

अर्थात् आत्मा का ही दर्शन, श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन से करना चाहिये। निदिध्यासन ध्यान का ही पर्यायवाची सा है। यह योग भवन का सप्तम सोपान है। हठयोग, राजयोग, लय-योग, मन्त्र योग इत्यादि अनेकों योग विधियों में यद्यपि राज-योग या अध्यात्म-योग प्राचीन एवं सर्व श्रेष्ठ है। परन्तु हठयोग विशेष रूप से शरीर-साधना से सम्बन्धित है। हठयोग, का साहित्य बहुत वृहद है। इसे कुण्डलिनी योग के नाम से भी जाना गया है। मूल रूप से हठयोग दो प्रकार का है। एक तो

गोरक्ष आदि नाथ सिद्धों द्वारा दूसरा महर्षि मृकण्ड ने प्रतिपादित किया है।

**द्विधा हठः स्यादेकस्तु,**
**गोरक्षादि सुसाधकैः।**
**अन्योमृकण्ड पुत्रैः,**
**साधितो हठ संज्ञक॥**

महात्मा कबीर की साधना में गोरक्ष पद्धति के हठयोग का अत्यधिक प्रभाव है। हठयोग का सबसे प्रमुख विषय नाड़ी जय करना है। इसी का विकसित रूप कुण्डलिनी शक्ति का है। इसीलिये कबीर की साधना पद्धति में नाड़ी जय एवं कुण्डलिनी शक्ति योग की चर्चायें बहुत ही सूक्ष्म रूप से की गई है। षट् चक्रों का रहस्य नाड़ियों की विविध चर्चायें अन्य लेखों में विस्तार पूर्वक सिद्धयोग में प्रकाशित हो चुका है। अतः यहां मात्र संकेत के लिये थोड़ा वर्णन करना उचित होगा। छहों चक्र नाड़ियों की ही संरचना है। चक्रों से सम्बधित प्रमुख नाड़ियां इड़ा पिंगला और सुषम्ना हैं। सुषम्ना नाड़ी अग्नि स्वरूपा मानी गई है। सुषम्ना में कुण्डलिनी इड़ा और पिंगला के समान गति होने पर प्रवेश करती है। योगी का लक्ष्य कुण्डलिनी शक्ति को सुषम्ना द्वारा चक्रों का भेदन करते हुये सहस्रार में ले जाना होता है। यही पूर्ण समाधि की अवस्था प्राप्त होती है।

पहला चक्र मूलाधार के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें पृथ्वी तत्व प्रधान है। इसी चक्र के नीचे कुण्डलिनी त्रिकोणात्मक रूप में स्वयंभू लिंग से साढ़े तीन वलयों में लिपटी हुई सुप्ता अवस्था में पड़ी रहती है। मूलाधार की सफलता वाक् सिद्धि है ऐसा शिव-संहिता में उल्लेखित है।

**यः करोति सदा ध्यानं,**
**मूलाधारे विचक्षण।**
**तस्य स्याहर्दुरी सिद्धि-**
**र्भूमी त्याग क्रमेणादे॥**

इसी प्रकार स्वाधिष्ठान चक्र की सफलता से पाताल नामक सिद्धि मिलती है जिससे योगी सर्वगतिमय हो जाता है। इसके पश्चात् मणिपूरक की सफलता से एवं अनाहद चक्र के जय पाने पर विश्व-सार तन्त्र के अनुसार अनाहद ध्वनि उत्पन्न होती है। इससे खैचरी शक्ति योगियों को प्राप्त होती है। इसी प्रकार विशुद्ध चक्र एवं आज्ञा चक्र द्वारा भिन्न-भिन्न उत्तरोत्तर अवस्थायें प्राप्त हो जाती हैं। सबसे अन्त में सहस्रार चक्र आता है। इसमें एक हजार दल माने गये हैं। इसमें बीस विवर होते हैं। इस चक्र का स्थान तालु-मूल बतलाया गया है।

श्री कबीर ने अपने साधनात्मक अनुभवों द्वारा चक्रों का बड़ा ही रहस्यात्मक वर्णन किया है। एक स्थान पर भगवान विष्णु के रूप पर मोहित कबीर कहते हैं कि मेरा मन विष्णु में ही लगा हुआ है, उन्हीं के चरण कमलों में

अनुरक्त है। वे विष्णु षट्-दल (मणि पूरक) चक्र में निवास करते हैं। साधक कठिन साधना द्वारा उन्हें प्राप्त करते हैं—

मन के मोहन बीठुला,
यह मन लागो तोहि।
चरन कंवल मन मानिया,
और न भावै मोहि रे॥
षटदल कमल निवासिया,
चहुँ को फेरि मिलाइ रे।

ब्रह्मरन्ध्र का सूक्ष्म वर्णन श्री कबीर की वाणी में इस प्रकार है—

दहुँ के बीच समाधियाँ,
तहाँ काल न पासै आई रे।
अष्ट कंवल दल भीतरा,
तंह श्री रंग केलि कराय रे॥
बंकि नाल के अन्तरे,
पश्चिम दिशा की बाट रे।
नीझर झरै रस पीजिए,
तहँ भंवर गुफा के घाट रे॥

उपरोक्त रचना में श्री कबीर जी बतलाते हैं कि "सुषम्ना मार्ग के अन्दर पश्चिम दिशा के मार्ग से अमृत झरता रहता है। ऐ 'साधकों' उस भंवर गुफा के घाट पर रहकर उस अमृत का पान करो।"

इस ब्रह्मरन्ध्र में योगी को रहस्यात्मक दृश्यों एवं ध्वनियों का अनुभव होता है। कबीर उन अनुभवों का वर्णन करते हुये कहते हैं कि—

गगन गर्जे मघ जोइये,
तहँ दीसै तार अनन्त रे।
बिजुरी चमकि घन वरषि है,
तहँ भीजत हैं सब सन्त रे॥

अर्थात् मेघों की गर्जना एवं बिजली की चमक के साथ साधक इस अवस्था में अमृत रस का पान करके दिव्य अनुभूतियों को प्राप्त करता है।

इसी प्रकार अन्य चक्रों का भी सूक्ष्मतर वर्णन करते हुये श्री कबीर पूर्णावस्था का भी वर्णन कुछ निम्न प्रकार से मस्ती भरी वाणी में करते हैं :—

मुनिजन महल न पावई,
तहाँ किया विश्राम।
हद छाणि बेहद गया,
किया शून्य स्नान॥
जहाँ न चींटी चढ़ सके,
और न राई ठहराइ।
मन पवन का गमन ही,
तहँ कबीर पहुँचे जाय॥

अपितु नाना प्रकार से एक-एक चक्रों में होने वाले दिव्य अनुभवों का बड़ा ही रहस्य मय वर्णन श्री कबीर जी ने किया है। जैसा कि पूर्व से विदित है कि बिना कुण्डलिनी (सर्पिणी) जागरण के आध्यात्मिक अनुभूतियाँ

का अनुभव नहीं हो पाता । श्री कबीर ने कुण्डलिनी के भी रहस्य पूर्ण वर्णन किये हैं। इसे कहीं उन्होंने नागिन व कहीं सर्पिणी से संम्बोधित किया है। यह शब्द लगता है कि हठयोग प्रदीपिका के आधार पर लिया गया है क्यों कि इस ग्रन्थ में कुटिलाङ्गी, भुजंगी, शक्ति, ईश्वरी, कुण्डली, अरुन्धती इत्यादि कुण्डलिनी के पर्याय में लिये गये हैं।

कुटिलांगी कुण्डलिनी,
भुजंगी शक्तिरीश्वरी।
कुण्डल्यरुन्धती चेते,
शब्दा पर्याय वाचकाः ॥

—हठयोग प्रदीपिका

श्री कबीर ने सर्पिणी की महिमा को बहुत ही भावात्मक ढंग से वर्णन किया है। वे कहते हैं "यह सर्पिणी सर्वाधिक शक्तिमान है। इससे अधिक शक्तिमान और कोई नहीं है। इसी ने ब्रह्म, विष्णु और महादेव को छल रखा है। सुषुम्ना नाड़ी के निर्मल जल में निवास करने वाली कुण्डलिनी रूपी सर्पिणी को मार देना चाहिये। गुरु के प्रसाद से साधक मित्रालज होकर ही इसे मार सकता है। जिसने ईश्वर को पहिचान लिया है उसके लिये सर्पिणी का कोई अस्तित्व नहीं। वह तो सहज ही में सर्पिणी को मार देता है। जिसने इस कुण्डलिनी शक्ति रूपी नागिन को जीत लिया है उसका यम भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। वह साधक तो अमर हो जाता है। कुण्डलिनी शक्ति से बढ़ कर कोई सूक्ष्म पदार्थ इस संसार में नहीं है।"

सर्पिनी से ऊपर नहीं बलिया,
जिन ब्रह्मा विष्णु महादेव छलिया।
मारू-मारू सर्पनी निर्मल जल पैठी,
जिनी त्रिभुवन ले गुरु प्रसाद दीठी ॥
सर्पनी, सर्पनी क्या कहहु भाई,
जिनि साचु पछान्या तिनी सर्पनी खाई।
सर्पनी ते आन छूछ नहि अवरा,
सर्पनी जीति कहा करे जमरा ॥

एक स्थान पर इस कुण्डलिनी शक्ति को कैसे जागरण किया जाय इस हेतु शाम्भवीमुद्रा के अनुष्ठान का विधान बतलाया गया है। भृकुटी के मध्य में दृष्टि को स्थिर करके ध्यान योग परायण होने पर कबीर कहते हैं कि महाज्योति के जागरण होने पर परम सुन्दरी उस परब्रह्म के साथ रमण करती दिखाई पड़ती है।

कबीर तेज अनन्त का,
मानो उगा सूरज श्रेणि।
पति संग जागी सुन्दरी,
कौतिग दीठा तेणि ॥

कुण्डलिनी का रूपकों द्वारा किया गया वर्णन निम्न प्रकार से श्री कबीर जी ने किया है—

भंधचि भंधनु पाइया।
मुकतै गुनि अनल बुझाइया।

जब नल सिख यहु मन चीह्ना,
तब अन्तर मंजनु कीह्ना ॥
पवन पति उन्मनि रसन खरा,
नहीं मिरतु न जनम जरा ॥
उलटी लैं सकति सहारं,
पैसीले गगन मझारं ॥
बेधी अले चक्र भुजंगा,
भेंटी अले राइ निसंगा ।
चुकी अले मोह मई आशा ॥
ससि कीनों सूर गिरासा ।
जब कुम्भक भरि पूरि लीणी,
तब बागे अनहद बीणी ॥
बकतैं बकि सबद सुनाइया,
सुनतैं सुनि मनि बसाइया ॥
करि करता उतरसि पारं,
कहे कबीरा सारं ॥

इस प्रकार से जीवों के अन्दर सुषुप्ति अवस्था में रहने वाली महाशक्ति कुण्डलिनी के जागरण बिना आध्यात्मिक प्रकाश का होना असंभव है। श्री कबीर अपने साधनात्मक अनुभवों द्वारा इस बात की पुष्टि "सोवत नागिन जागी" कहते हुये आगे आध्यात्मिक प्रगति का इतिहास बड़ी ही सूक्ष्मता से वर्णन किया है। एक बात और है जिसका श्री कबीर ने सर्वत्र साधकों को स्मरण करते रहे हैं और वह है अध्यात्म जगत में सद्गुरु की परम आवश्यकता।

इह सर्पनी ताकी कीती होई,
बलु अबलु किआ इस ते होई,
इह बसती ता बसत सरीरा,
गुरु प्रसाद सहजि तरै कबीरा,

अर्थात इसी सर्पिणी रूपी कुण्डलिनी से कीर्ति बल इत्यादि सब कुछ होता है, यहाँ तक कि इसी के कारण शरीर जीवित है। गुरु कृपा से सहज ही मनुष्य इस शक्ति को जान कर भव सागर से पार हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्य सुन्दरता, स्वास्थ्य और सुखमय जीवन की इच्छा करता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वह सौ वर्षतक जीवित रहे। वह सौ वर्षतक उस प्रकार का जीवन नहीं चाहता जो रोते, झींकते हुए और खाटपर पड़े हुए औषधियों का सेवन करते हुए कटे। वह ऐसा जीवन चाहता है जो काम करते हँसते-खेलते हुए बीते।

अतः प्रतिदिन प्रतिक्षण मनुष्यों चाहिये कि वह निराश न हो, वरं सर्वदा आशाजनक प्रसन्नता, स्वास्थ्य और सफलता के विचारों को मन में धारण करे। सुख और आशा की तरंगें रक्त को गतिपर ही उत्तम प्रभाव डालेंगी और उसको शुद्ध तथा साफ करके स्वास्थ्य के शुभप्रभाव को सम्पूर्ण देह में बांट देंगी, जिससे तुम अपने स्वास्थ्य को अच्छा और शरीर को व्याधियों से सुरक्षित रख सकोगे।

—अज्ञात

# आध्यात्मिक जगत एवम् श्री सद्‌गुरु तत्व

[ श्री पूर्णचन्द्र पन्त शास्त्री ]

[ आध्यात्मिक जगत में ही नहीं किन्तु भौतिक जगत में भी 'श्री सद्‌गुरु तत्व' साधक के मनोबल को ऊंचा उठाकर उसे वांछित सिद्धियों की प्राप्ति कराने में कितना सहायक होता है इस पर विद्वान लेखक ने प्रस्तुत लेख में विशेष प्रकाश डाला है। सं० सं० ]

कठोपनिषद् में कहा गया है कि 'पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभू' इत्यादि। अर्थात्— विधाता ने सभी इन्द्रियों के द्वार बहिर्मुख बनाये है, जिस कारण जीव स्वाभाविक रूप से बाहर के विषयों का ही अनुभव करता रहता है। वह प्रकृति के तत्वों से पूरी तरह प्रभावित रहता है और संसार चक्र में भटकता रहता है : वह अपनी बहिर्मुखी वृत्ति से इन्द्रियों के विषय शब्द, स्पर्श, रूप, रस, एवं गन्ध का अनुभव करता हुआ उन्हीं में लिप्त रहता है। आध्यात्मिक जगत अर्थात् रूहानी दुनियां का हमें कोई ज्ञान नहीं होता। वास्तव में देखा जाये, तो यह अज्ञान ही जीव के जन्म-मरण का कारण है।

बाह्य जगत जो संसार भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है—'परिवर्तन शील। संसरतीति संसारः'। जो परिवर्तन शील है, नाशवान है, जहां मोह और अज्ञान का साम्राज्य है और जहां जीव को विवश होकर प्रकृति की शक्तियों के आधीन रहना पड़ता है—उसे ही संसार कहा जाता है।

किन्तु आध्यात्मिक जगत इससे सर्वथा भिन्न है। वहां सत्, चित् एवं आनन्द का सतत प्रवाह रहता है। वहां पहुंचकर जीव प्रकृति के नियन्त्रण से मुक्त ही नहीं हो जाता, बल्कि प्रकृति की सभी शक्तियों पर अपना अधिकार कर लेता है। आध्यात्मिक जगत में प्रवेश कर लेने पर मनुष्य पर ईश्वर की अव्यक्त प्रकृति अर्थात् माया का कोई प्रभाव नहीं रहता। उसका मनोबल बढ़ जाता है। सुख, दुःख तथा लाभ हानि में उसकी चित्त वृत्ति समान रहती है। महान से महान विपत्ति आने पर भी वह विचलित नहीं होता। जिस कारण उसकी संकल्प शक्ति बढ़ जाती है और उसी के बल पर वह कई प्रकार के चमत्कार-पूर्ण कार्य कर डालता है। उसके अन्दर दैवी सम्पदाओं की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होती रहती है, जिससे उसका आत्मबल बढ़ता जाता है। किसी को किसी प्रकार की प्रेरणा दे देना, वरदान तथा अभिशाप की शक्ति तथा दूर की बात एवं दूसरे के मन की बात को जान लेना आध्यात्मिक जगत में प्रविष्ट साधक के लिए

साधारण सी बात है।

क्योंकि मनुष्य का मन अपार शक्तियों का भण्डार है। वह जितना चञ्चल है, उतना ही शक्तिशाली भी है। जब तक वह अनियन्त्रित है, उसकी शक्ति का अनुभव नहीं होता। कारण कि—'संकल्प-विकल्पात्मकं मनः' इस सिद्धान्त के आधार पर मन का व्यापार संकल्प विकल्प करना मात्र है, किन्तु जब साधक मन पर नियन्त्रण कर लेता है, तो मन की वह विलक्षण शक्ति जो कि-संकल्प-विकल्प में प्रतिक्षण नष्ट होती रहती थी, वह नष्ट होने की अपेक्षा उसके पास एकत्रित होने लगती है। ज्यों ही उसके मन में कोई संकल्प उठता है, संचित शक्ति तत्काल उस संकल्प को पूरा करती है। इस प्रकार निरन्तर अभ्यास से साधक योग की अन्तिम भूमिका समाधि को प्राप्त कर लेता है तथा अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व, वशित्व इन अष्ट-सिद्धियों तथा दूर दर्शन, दूरश्रवण, आकाशगमन, भूतजय तथा परकाया प्रवेश आदि सिद्धियों का स्वामी बन जाता है।

चूंकि जीव अनादि काल से अज्ञान रूपी अन्धकार में भटकता रहा है। अतः वह आध्यात्मिक क्षेत्र में तब तक प्रवेश नहीं कर सकता, जब तक उसे सद्गुरु की प्राप्ति नहीं होती। गुरु शब्द का अर्थ है—अज्ञान रूपी अन्धकार को हटाने वाला।

जैसा कि कहा गया है—

**गु शब्दोन्धकारः स्यात्,**
**रु शब्दस्तन्निरोधकः।**

अर्थात्-गु शब्द का अर्थ है अन्धकार और रु शब्द का अर्थ है उसे रोकने वाला।

मनुष्य को सद्गुरु की प्राप्ति जन्मजन्मान्तर के संचित पुण्यों के फलस्वरूप ही हुआ करती है। जब अनेक जन्मों के पुण्यों का उदय होता है तभी प्रभु कृपा से किसी सन्त के रूप में गुरुदेव मिला करते है। प्रभु कृपा के बिना गुरुदेव नहीं मिल सकते।

श्री रामचरित मानस में कहा भी गया है—

**अब मोहि भा भरोस हनुमंता।**
**बिनु हरि कृपा मिलहिं नहि संता॥**

व्यावहारिक जगत में गुरुदेव जहां स्थूल रूप से साधक का मार्ग निर्देशन करते है और उस पर हर प्रकार को कृपा किया करते है, वहीं अन्तर्जगत में सूक्ष्म शरीर से उस पर सतत् कृपा-वृष्टि करते रहते है। गुरुदेव की शरण में आ जाने पर साधक के लौकिक कार्य भी स्वतः सिद्ध होते जाते है। गुरुशक्ति सदा उसके साथ रहा करती है और कदम-कदम पर उसकी सहायता करती है। शरण में आते ही साधक का गुरुदेव के साथ एक अभेद्य सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और गुरुदेव सूक्ष्म शरीर से सदा उसके पास रहा करते हैं। उनका सम्बन्ध उसी प्रकार परस्पर बना रहता है जिस प्रकार 'वायरलेस' में लोग एक दूसरे से

सम्पर्क रखा करते है और दूर रहते हुए भी वे एक दूसरे को उसी प्रकार देखा करते हैं जैसे कि टैलीविजन में लोग दूरस्थ घटना को प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं। दूसरे शब्दों में गुरुदेव को एक प्रकार का टैलीविजन केन्द्र भी कहा जा सकता है और साधक का अन्तःकरण टेलीविजन यन्त्र के समान है। अन्तर केवल इतना है, कि इस केन्द्र से गुरुदेव किसी दृश्य विशेष एवं सन्देश को प्रसारित करने के साथ-साथ प्रत्येक घटना को स्वयं भी देख एवं सुन सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि— साधक अपने मनरूपी रिसीवर को ठीक रखे। ताकि गुरुदेव द्वारा प्रसारित सन्देश हम ग्रहण कर सकें। यन्त्र को ठीक रखना साधक का काम है। यदि वह अपने अन्तः करण रूपी यन्त्र को यथार्थ स्थिति में नहीं रख सकता, तो उसके लिए गुरुदेव की शक्ति पर सन्देह रखना ठीक नहीं है।

'गुरु' शब्द का अर्थ जितना सरल है, वह स्वयं में उतना ही व्यापक भी है। गुरुतत्व अखण्ड मण्डलाकार रूप से तीनों लोकों और सभी ब्रह्माण्डों में सदा व्याप्त रहता है।

**घटाकाश गुप्तं महाकाश रूपं,**
**चिदाकाश व्यक्तं गुरुदेव नमामि।**

अर्थात्-घड़े के अन्दर स्थित आकाश की भांति गुप्त, विस्तृत आकाश की भांति सर्वत्र व्यापक तथा प्रकाश रूप आकाश में प्रकट होने वाले गुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ।

गुरु तत्व वह विशुद्ध परब्रह्म है, जो कि काल की हद से भी परे है। वह गुरुओं का भी गुरु है।

योग दर्शन में कहा गया है :—

**सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानव-च्छेदात् ।**

अर्थात्-काल की हद से परे होने के कारण वह पिछले सभी गुरुओं अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर आदि का भी गुरु है।

गुरुदेव 'कर्तुं म कर्तुं मन्यथा कर्तुं म' की सामर्थ्य रखते है, किन्तु साधक के हृदय में श्रद्धा और विश्वास का होना नितान्त आवश्यक है।

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है:-

**श्रद्धावान लभते ज्ञानं,**
**तत्परः संयतेन्द्रियः।**

धर्मशास्त्र में कहा गया है :—

**देवे तीर्थे द्विजे, मन्त्रे,**
**दैवज्ञे, भेषजे, गुरौ।**
**यादृशी भावना यस्य,**
**सिद्धिर्भवति तादृशी ॥**

अर्थात्—देव में, तीर्थ में, ब्राह्मण में, मन्त्र में, ज्योतिषी में, वैद्य में एवं गुरु में जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है।

साधक को गुरु में एवं ईश्वर में भेद-बुद्धि

नहीं रखनी चाहिए, तभी उसे ज्ञान की प्राप्ति संभव है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा भी गया है–

**यस्य देवे परा भक्तिः,**
**यथा देवे तथा गुरौ।**
**तस्यैते कथिताः ह्यर्थाः,**
**प्रकाशन्ते मनीषिणः ॥**

अर्थात् जिसकी ईश्वर पर अगाध भक्ति हो तथा वैसी अगाध श्रद्धा एवं भक्ति गुरुचरणों भी हो वही व्यक्ति आध्यात्मिक ज्ञान को प्राप्त कर सकता है।

श्री रामचरितमानस में शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देते हुए भगवान राम अपने श्रीमुख से कहते हैं :—

**गुरुपद पंकज सेवा,**
**तीसरि भगति अमान।**

एक अन्य प्रकरण में मानसकार ने गुरु का स्थान ईश्वर से भी ऊँचा बताया है :—

**राखइ गुरु जो कोप बिधाता,**
**गुरु बिरोध नहिं कोउ जग त्राता।**

अध्यात्म मार्ग के पथिक को अपना आहार तथा व्यवहार शुद्ध रखना चाहिए।

उसे ऐसे पवित्र वातावरण में रहना चाहिए जो कि उसकी प्रगति में सहायक हो। अन्यथा आहार दोष एवं संगदोष से उसका अन्तः-करण पुनः मलिन हो जायेगा और उसकी प्रगति रुक जायेगी। यम-नियमों का पालन करना एवं अष्टाङ्ग योग के सिद्धान्तों पर आचरण करना भी उसके लिए नितान्त आवश्यक है।

निस्सन्देह आध्यात्मिक जगत बाह्य जगत से कहीं अधिक विस्तृत है और समस्त ब्रह्माण्ड इस पिण्ड रूप देह में विद्यमान है। बाह्य जगत में जो भी भौतिक उपलब्धियाँ आज हमें दृष्टि-गोचर हो रही हैं, उससे कहीं अधिक चमत्कार पूर्ण कार्य योगी लोग अध्यात्म बल पर किया करते हैं। आध्यात्मिक जगत में योगीजन मनोबल से विचरण किया करते हैं और संकल्प मात्र से प्रत्येक कार्य को सम्पन्न कर लिया करते हैं।

आध्यात्मिक जगत में प्रवेश करना कठिन अवश्य है, किन्तु असंभव नहीं है। गुरुदेव की कृपा से जिज्ञासु साधक इस जगत में प्रवेश करने में समर्थ हो जाता है और सतत् अभ्यास से उत्तरोत्तर प्रगति करता हुआ सच्चिदानन्द स्वरूप परब्रह्म में लीन होकर सदा सदा के लिए संसार चक्र से छूट जाता है।

# ब्रह्म जिज्ञासा

[ श्री किशोरीलाल शास्त्री, झांसी, उ.प्र. ]

[ प्रस्तुत लेख के लेखक आदरणीय शास्त्री जी 'सिद्धयोग' के विशिष्ट लेखकों में से एक हैं। ब्रह्म जिज्ञासा का समाधान आपने अपने ढंग से प्रस्तुत करके पाठकों को चिन्तन की नई दिशा प्रदान की है ऐसा हमारा विश्वास है। सं० सं० ]

ब्रह्म के संबंध में जिज्ञासा (जानने की इच्छा) उत्पन्न होने पर बड़े-बड़े तत्त्व वेत्ताओं, शास्त्रज्ञों योगियों, रिसर्चस्कालरों (शोधकर्ताओं) ने लम्बी-लम्बी बुद्धि की-ज्ञान की-यात्रायें कीं इन यात्राओं में जो आगे निकल जाता वही तो विजयी होता। परन्तु प्रायः सभी जिज्ञासु असफल से ही रहे। सभी ने अपनी-अपनी यात्रा के अन्तिम विश्राम की उपलब्धि के वर्णन बड़ी हृदयग्राही मधुर भाषों में किये हैं-एक कहते हैं-'सत्यं ज्ञानमानन्दं ब्रह्म अर्थात् सत्य ही ब्रह्म है, ज्ञान ही ब्रह्म है, आनन्द ही ब्रह्म है। अथवा सत्य ज्ञान से उत्पन्न हुआ आनन्द ही ब्रह्म है। या यों कहें सत्यता का अनुभव ही आनन्द है और वह आनन्द ही ब्रह्म है, अर्थात् सत्य ही ब्रह्म है। इसी से कहा है "ब्रह्म सत्यम्" "जगत् मिथ्या"। अर्थात् जो चला जाता है वह मिथ्या है जैसे जगत्। और जो मौजूद रहता है वह सत्य है वही ब्रह्म है जैसे—आकाश। तभी तो किसी ने कहा है 'खं ब्रह्म' इति। इसी 'खं ब्रह्म' वाक्य ने ही भटके हुए संसार के सब से बड़े वैभवशाली राष्ट्र अमेरिका को सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म का प्रकाश दिखाकर भारत के जगद् गुरुत्व की भावना के आगे नत मस्तक किया था और भारतवर्ष के प्रति कृतज्ञता प्रगट करने को बाध्य किया था।

इस ज्ञान के पूर्व तो अमेरिका आदि देश केवल भोग-भूमि ही थे जैसा कि भारतीय ऋषियों का कथन था कि कर्म भूमि (जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति देने वाली) तो भारतवर्ष ही है शेष पृथ्वी भोग भूमि है। इसी से वहां के निवासी—

यावज्जीवेत्सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।

के सिद्धान्त का पालन करते थे (हैं)। परन्तु इतिहास प्रसिद्ध है कि जिस समय श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज अमेरिका में पहुँचे और वहां बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने सुना कि भारतवर्ष से एक महान वैज्ञानिक ब्रह्म-ज्ञानी महात्मा धर्म प्रचारार्थ हमारे देश में आये हैं और वे प्रत्येक प्रश्न का सही-सही उत्तर देते हैं और श्रोताओं को उसका सही

अनुभव भी करा देते है,तब उन्होंने श्री स्वामी जी का बड़ा भक्तिभाव पूर्ण सम्मान किया, और श्री स्वामी जी के प्रवचन का सुन्दर प्रबंध किया। कहते हैं उस प्रवचन-कक्ष में इतनी शान्ति थी जैसे निर्वात सुप्त मौन जलाशय होता है, यदि सुई भी जमीन पर गिर जाय तो उसके गिरने का शब्द सुना जा सकता था। श्री स्वामी जी के लिए उच्च व्यासासन बनाया गया था। उसी आसन के पीछे सुन्दर बोर्ड में प्रश्न अंकित किया गया था और उसे सुन्दर सुनहरे रेशमी आवरण से आच्छादित कर दिया था, जिसका उद्घाटन और विवेचन श्रीस्वामीजी को ही करना था।

नियत समय से पूर्व ही सभी श्रोता उपस्थित होकर स्वस्वासनासीन हो गये। श्री स्वामी जी ने भी ठीक नियत क्षण में ही प्रवचन कक्ष में प्रवेश किया। सभी श्रोताओं ने शांति से उठकर स्वामी जी का सम्मान किया और अपने-अपने स्थान पर से ही करबद्ध नत मस्तक होकर अभिवादन कर एक स्वर से "श्री जगद् गुरु भारतीय स्वामी जी की जय हो ऐसा कह कर श्री स्वामी जी का जयघोष किया। तत्क्षण ही श्री स्वामी जी को वहाँ के व्यवस्थापक महोदय ने आसनासीन कराया, पुष्प मालादि से पूजन किया और उपदेश प्राप्त करने के लिये नम्रतापूर्वक प्रश्नपट के उद्घाटन करने की प्रार्थना की, तब श्री स्वामी जी ने खड़े होकर मेघगंभीरवागिरा प्रणव (ओंकार) का घोष करते हुए "ॐ खं ब्रह्म" कह कर ही प्रश्न पट का उद्घाटन किया क्योंकि प्रश्न पट पर पहिले ही खं (०) शून्य लिखा था जिसे श्री स्वामी जी ने पहिले ही दिव्य दृष्टि से देख लिया था।

करतालियों से प्रवचनकक्ष (हॉल) गूंज उठा। एक क्षण बाद ही पूर्वानुरूप शान्ति व्यवस्थित हुई। श्रोतागण उत्कंठापूर्वक श्री स्वामी जी के मुखचन्द्र की मुस्कान रूप चन्द्रिका को चकोर के समान एकटक दृष्टि से पान कर रहे थे कि श्री स्वामी जी ने,शान्ति को वर्द्धमान करते हुए—

**ॐ ईशावास्य मिदं सर्वं, यत्किंच जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुंजीथा, मागृधःकस्य स्विद्धनम्।**

**ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं,**
**पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।**
**पूर्णस्य पूर्णमादाय,**
**पूर्णमेवाव शिष्यते॥**

इन ब्रह्म परक मन्त्रों का उच्चारण कर शून्य (खं) का विवेचन प्रारम्भ किया। जिस प्रकार शून्य अविभाज्य है, उसी प्रकार ब्रह्म भी अविभाज्य है जैसे आकाश। जिस प्रकार शून्य में शून्य जोड़ने से शून्य ही होता है और शून्य में से शून्य घटाने पर भी शून्य ही रहता है उसी प्रकार ब्रह्म में से ब्रह्म (जीवात्माओं के घटाने पर और जीवात्माओं के सायुज्य मोक्ष

प्राप्त कर ब्रह्म में लीन होने पर ब्रह्म न घटता है न बढ़ता है। इससे यह शून्य (०) ही ब्रह्म के निर्गुण निर्विकार होने का उपमान है इसी प्रकार ही आकाश भी उपमान है परन्तु ब्रह्म स्वयं सर्व शक्तिमान् चैतन्य है इससे वह संसार को प्रगट करने में और लय करने में समर्थ है। उसकी इच्छानुसार ही संसार का नियमन होता है। जिसका ऋषि-मुनियों ने धर्म शास्त्र के रूप में समाधि अवस्था में प्रतिभासित हुए वेद मन्त्रों में से लौकिक संस्कृत भाषा में षट् दर्शन, स्मृति, पुराण, इतिहास के रूप में संसार को ज्ञान प्रदान किया है। जिसके अनुसार पवित्र आचरणों का संबल लेकर आज भी साधक गण उस अनादि अनन्त ब्रह्म की प्राप्ति के अनन्त मार्ग के पथिक बने हुए हैं। परन्तु लक्ष्य की प्राप्ति वही कर पाता है जिस जीवात्मा को वह पर ब्रह्म परमात्मा अपने इस जगन्नाटक के वैभव से मुक्त करके अपने में लीन करना चाहता है।

'यमेव वृणुते तेन लभ्यः' ।

— श्रुति

फिर भी इसका ध्यान रहे कि उस अनन्त के अनन्त मार्ग को अनन्त जन्मों के साधनों से ही पार किया जाता है।

**अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो याति, परां गतिम् ।**

—श्रीमद्भगवद्गीता

सम्भव है वही मानव जन्म ही परांगति को देने वाला हो, इससे इस मानव शरीर को पवित्र आचरणों द्वारा उस धाम के प्रवेशद्वार तक पहुँचने योग्य बनाना चाहिये—

**'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद् धाम परमंमम'**

जहां से फिर नहीं लौटना होता। इसी के लिये कलिपावनावतार महात्मा गोस्वामी श्री तुलसीदासजी ने सब (प्राणिमात्र) को सुखी बनाने के लिये अपने श्री रामचरित मानस में स्पष्ट भाषा में लिखा है :—

**कबहुँक करि करुणा नर देही ।**
**देत राम बिनु हेतु सनेही ॥**
**साधन धाम मोक्ष कर द्वारा ।**
**पाय न जो पर लोक सुधारा ॥**
**सो परत्र दुख पावई सिर,**
**धुनि धुनि पछताय ॥**
**कालहि कर्महि ईश्वरहि,**
**मिथ्या दोष लगाय ॥**

इससे—

**सियाराम मय सब जग जानी ।**
**करहु प्रणाम जोरि जुग पानी ॥**

मानव ! सावधान ! आत्मनःप्रतिकूलानि परेषांन समाचरेत् । ॐ शांतिः ३ ॥

# मानव-जीवन का परम उद्देश्य

[ श्री डॉ० ऋषिराम शर्मा, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी ]

[ 'मानव जीवन का परम उद्देश्य' क्या है कैसे उसे प्राप्त किया जा सकता है इस विषय को विद्वान् लेखक ने प्रस्तुत लेख में शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर 'सिद्ध-योग' के पाठकों को सरलता से समझाने का सराहनीय प्रयास किया है। सं० सं० ]

नित्यानन्दं परम सुखदं,
केवलंज्ञानमूर्तिम् ।
द्वन्द्वातीतं गगन सदृशं,
तत्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमलमचलं,
सर्वधी साक्षीभूतम् ।
मायातीतं त्रिगुणरहित,
श्री सद्गुरुं तम् नमामि ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य,
ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन,
तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥

इस भूलोक में अनेकानेक जीव-जन्तु हैं जो अपने जन्म जन्मान्तर के पाप-पुण्यों के परिणाम स्वरूप अनेकानेक योनियों में पड़े हुए मशीन की तरह यथानियत कार्यों में व्यस्त हैं। उन सभी में चेतना-शक्ति उस जगदात्मा परमात्मा की ही चिन्मय सत्ता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुखारविन्द से स्वीकार किया है कि—

अपरेयमितस्त्वन्यां ,
प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो,
ययेदं धार्यते जगत् ॥
एतद्योनीनि भूतानि,
सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः,
प्रभवः प्रलयस्तथा ॥

अर्थात् जड़रूप बाह्य स्थूल एवं सूक्ष्म जगत के अतिरिक्त मेरी एक और चेतन प्रकृति है जो समस्त प्राणियों में जीव रूप से आभासित होती है। इस जगत में जितने भी जीव हैं सब का मूलभूत अधिष्ठान मैं ही हूं। इसीलिए तो इस सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति एवं प्रलय मेरे में ही सन्निहित है।

यह बात बहुत रहस्यमय है और आश्चर्यजनक है। स्वयं भगवान् ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि—

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनम् ।
आश्चर्यवत् वदति तथैव चान्यः ॥
आश्चर्यवत् चैनमन्यो श्रृणोति ।
श्रुत्वापि एवं वेद न चैव कश्चित् ॥

अर्थात् सभी इसको आश्चर्य पूर्ण दृष्टि से देखते हैं, आश्चर्यमय होकर इसका वर्णन करने की चेष्टा करते हैं, आश्चर्यचकित होकर सुनते हैं फिर भी कोई इस रहस्य को समझ नहीं पाता है।

वस्तुतः जगदात्मा परमात्मा की चिन्मय सत्ता आकाश की तरह सर्वव्यापक है जिसके सम्पर्क से अन्तःकरण रूपी संस्कारमय मशीनों में कार्य होता दिखाई देता है ठीक वैसे ही वैसे सीमित माध्यम में व्याप्त विद्युत की शक्ति का सम्पर्क पाते ही सब मशीनें अपना अपना कार्य करने लगती हैं। यह कार्य तभी रुकता है जब या तो विद्युत् शक्ति का सम्पर्क समाप्त कर दिया जाय या मशीन में कोई खराबी आ जाय। यद्यपि विद्युत् एक शक्ति मात्र है, उसमें कोई रूप-रंग, कोई आकार-विकार एवं गर्म-ठण्डा आदि गुण धर्म नहीं हैं, फिर भी मशीनों के भेद के कारण अनेक परस्पर विरोधधर्मी कार्य होते हैं, उसी एक शक्ति से कूलर के माध्यम ठण्ड मिलती है, हीटर के माध्यम ऊष्णता एवं अनेक अद्‌भुत कार्य होते हैं। जो व्यक्ति उसकी कार्य व्यवस्था से अनभिज्ञ है, उसके लिए यह भी आश्चर्यमय है। ठीक इसी प्रकार सर्वत्र व्यापक चिन्मय शक्ति का सम्पर्क पाकर कुत्ता, बिल्ली, शेर कीड़े-मकोड़े तथा समस्त मानव-लोक के प्राणी भिन्न भिन्न शरीर रूपी मशीनरी के माध्यम से कार्य कर रहे हैं। यद्यपि वह चिन्मय सत्ता निर्गुण एवं निर्विकारी है तथापि वासनामय अन्तः करणों की मशीनों के भेद से कार्यों में परस्पर विरोध पाया जाता है जैसे विद्युत् शक्ति की सहायता से चित्रपट पर सिनेमा में अनेक दृश्य जगत् की काल्पनिक लीलायें दिखा दी जाती हैं और बालक की अविकसित बुद्धि के लिए वह दृश्य सत्य भासित होते हैं और उन दृश्यों का रहस्य तब तक कुछ समझ में नहीं आता जब तक दृश्यों को पर्दे पर फेंकने वाली मशीन को रोक कर उस क्रिया को न समझा जाय, ठीक इसी तरह इस दृश्य जगत का रहस्य भी तब तक कुछ समझ में नहीं आता जब तक योग-साधना द्वारा वृत्तियों को अन्तःकरणपटल पर फेंकने वाली इस त्रिगुणात्मक माया की मशीन को रोक न लिया जाय। भगवान पतंजलि जी ने यहीं से योगोपदेश आरम्भ किया कि—

**योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।**

**तदा द्रष्टुर्स्वरूपे अवस्थानम् ।**

अर्थात् जब योग साधना से वृत्तियों का निरोध हो जाता है तो वृत्तियों की अन्तःकरण पर होने वाली लीला रुक जाती है और तब जिस चिन्मय सत्ता की शक्ति के सम्पर्कमात्र से वृत्तियां कार्य कर रही थी, वह चिन्मयशक्ति अपने निर्गुण, निराकार एवं निर्विकार स्वरूप में प्रकट हो जाती है। इसी भाव को जगदात्मा कृष्ण ने इस प्रकार प्रकट किया है :

**कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।**

**अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥**

अर्थात् जो लोग काम-क्रोधादि विकारों से जनित इन्द्रियों की वृत्तियाँ तथा अन्य मनोवृत्तियों का निरोध कर लेते हैं उनके चारों ओर ब्रह्मप्रकाश फैल जाता है और वह तत्वविद् ब्रह्ममय हो जाता है। यह ही अखण्ड ज्योति का प्रकाश है जो अपने प्रभु जी के तेजो मंडल से निकलकर सभी पर पड़ रहा है। जिस भाई ने अपने अन्तःकरण रूपी बल्ब की पावर बढ़ा ली है उसमें अधिक प्रकाश दिखाई देता है और जिन्होंने प्रमाद तथा आलस्य के वशीभूत होकर स्वाध्याय के द्वारा अपनी पावर को नहीं बढ़ाया उनके अन्तःकरण में प्रभु जी के दिव्य प्रकाश का प्राकट्य नहीं होता। इसलिए हम सभी भाई-बहिनों को चाहिए प्रभु जी के चरणों से प्रस्फुटित अविरल निर्मल प्रेमधारा के प्रवाह से अपने अन्तःकरण को धोकर उसकी पावर को बढ़ा लेना चाहिए। ऐसा न करने पर उस दिव्य शक्ति के प्रबल प्रवाह से आपको अन्तःकरण रूपी बल्ब टिमटिमाकर रह जायगा। इसी पावर बढ़ाने वाली प्रक्रिया को योग-साधना भी कहते है। योग-साधना के बिना यह बहुमूल्य जीवन स्वप्नवत बीत जायगा। आप कहेंगे कि स्वप्न तो मिथ्या है, उसका कोई अस्तित्व ही नहीं, किन्तु यह जगत तो सत्य प्रतीत होता है, इसे मिथ्या कैसे मान लिया जाय। इस पर विचार करने की आवश्यकता है।

संसार स्वप्नतुल्यो हि,
रागद्वेषादिसंकुलः।
स्वकाले सत्यवत् भाति,
प्रबोधे असत्यवत् भवेत्॥

अर्थात्—यह दिखाई देना वाला विस्तृत संसार एक स्वप्न मात्र है। जैसे स्वप्न का विस्तृत संसार निद्रावरण के दोष से अपने स्वप्नावस्था के काल में सत्य भासित होता है, केवल वृत्तिमात्र के आवरण में हमारा मन एवं सूक्ष्म शरीर दुःख भोगता है, ठीक वैसे ही जैसे जागृत अवस्था में। स्वप्न में जंगल में घूमने पर जंगल की सभी विपदाओं को भोगना पड़ता है, शेर आदि जंगली जानवरों के सम्मुख पड़ने पर जागृत अवस्था जैसा ही भयजनित दुःख भोगना पड़ता है। इन दुःखों से तभी मुक्ति मिल सकती है जब कि निद्रावरण हट जाय। निद्रादोष के हटते ही स्वप्न जगत् मिथ्या हो जाता है। जागने पर कोई फिर स्वप्न जगत् की चिन्ताओं में नहीं घुलता। ठीक इसी प्रकार अविद्यावरण के कारण हमें इस दृश्य जगत के अस्तित्व की सत्यता का भान हो रहा है। इसी कारण जीव अनेकानेक दुःख भोग रहा है। इन दुःखों से तब तक छुटकारा नहीं मिलेगा, जब तक अविद्यावरण नहीं हट जाता। यह अविद्यावरण क्या है? इसके स्वरूप को भी समझ लिया जाय। अवास्तविक ज्ञान को ही अविद्या कहते हैं। भगवान पतंजलि ने अविद्याका लक्षण किया है कि—

अनित्याशुचि दुःखानात्मसु,
नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या।

अर्थात् नाशवान चीजों में नित्यता की प्रतीति, अशुद्ध वस्तुओं में शुद्धता का भाव होना, दुःख में सुखानुभूति तथा जड़ में चेतनता की प्रतीति होना अविद्या है।

इस संसार के सभी प्राणी निरन्तर मृत्यु के मुख में जाकर नष्ट हो रहे हैं, फिर भी शेष प्राणी अपने को नित्य रहने वाला समझकर अनेक प्रकार के बैर-भाव में पड़े पापकर्मों में लगे हैं। हड्डी-मांस के बने अशुद्धि से भरे शरीर में पूर्णरूपेण आसक्त हैं, मृगतृष्णा की भांति विषय भोगों में भावी परिणाम, ताप एवं संस्कार दुखों को न देखकर उनमें सुख की खोज कर रहे हैं, माया की विक्षेपशक्ति से रचित शरीरादि जड़ पदार्थों को ही चेतन समझ बैठे हैं, यही सब अविद्या है।

इस अविद्या के प्रभाव में ही हम सब स्वप्नवत् मिथ्या जगत को सत्य मानकर माया के चक्र में फंस गये हैं। इस चक्र को चलाने वाले दो समान विपरीतधर्मी बल राग और द्वेष हैं। गति विज्ञान में इस प्रकार के बल चक्रीय गति प्रदान करते हैं और यह चक्रीय गति कितने भी शक्तिशाली बल के प्रयोग से भी नहीं रुकती। यह तभी रुक सकती है जब यत्नपूर्वक उतनी ही पूर्णशक्ति की विपरीत चक्रीय गति दी जाय। भगवान कृष्ण ने यही रहस्य गीता में प्रकट किया है कि

ईश्वरः सर्वभूतानां,
हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि,
यन्त्रारूढानि मायया॥
दैवी ह्येषा गुणमयी,
मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते,
मायामेतां तरन्ति ते॥

अर्थात् ईश्वर सभी जीवों के हृदय में विराजमान होकर उन्हें अपने माया-चक्र में घुमाता है। इस माया-चक्र को चक्रीय गति देने वाले दो विपरीत धर्मी समान बल राग और द्वेष हैं। यह माया-चक्र असीम शक्ति सम्पन्न है, इसे कोई भी जीव अपनी कितनी भी शक्ति लगाकर नहीं रोक सकता। इसे रोकने के लिए एक विशेष युक्ति की आवश्यकता है और वह है उन मायाधीश सद्गुरुदेव महाप्रभु जी के शक्तिपात से प्राप्त योगमयी विपरीतदिशा की चक्रगति। अब समस्या उठती है कि उन प्रभु से इस युक्ति को कैसे प्राप्त किया जाय, तो इसके लिए श्रद्धाभाव हीन कोई भी तपसाधना, दान एवं यज्ञ सक्षम् नहीं क्योंकि वह प्रभु तो कृतकृत्य है, वह तो प्रत्येक साधना के पीछे छिपे भाव को ही ग्रहण करते है। अतः उसके लिए उनके चरणों में अपने को समर्पण करना होगा। जगदात्मा भगवान कृष्ण स्वयं अपने मुखारविन्द से उपाय बताते हैं कि—

तद् विद्धि प्रणिपातेन,
परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं,
ज्ञानिनः तत्त्वदर्शिनः ॥

अर्थात् उस युक्ति को सीखने के लिए अपने को उनके चरणों में अर्पण कर दो, तन-मन धन से उनकी सेवा में लगकर योगजिज्ञासा का भाव प्रकट करें तभी वह तत्त्व विजयी तत्त्वज्ञानी प्रभु उस युक्ति को बतायेंगे। अब यहाँ एक प्रश्न और विचारणीय है कि क्या सभी प्राणी इस ब्रह्मविद्या के अधिकारी है? कोई भी विद्या यदि अनधिकारी को प्राप्त हो जाय तो वह उसका दुरुपयोग ही करेगा और इससे जगत् का अहित होगा। अतः एवं अखिलेश्वर भगवान श्री श्री कृष्ण को अपने मुखारविन्द से कहना पड़ा कि—

बुद्धया विशुद्धया युक्तो,
धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा,
रागद्वेषौ व्युदस्य च॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी,
यतवाक्कायमानसः।
ध्यान योगपरो नित्यं,
वैराग्यं समुपाश्रितः॥
अहंकार बलं दर्पं,
काम क्रोध परिग्रहम्।
विमुच्य निर्मम शान्तो,
ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

अर्थात् जिसकी बुद्धि शुद्धि हो चुकी है यानी जिसकी बुद्धि में ज्ञान का सतोगुणी प्रकाश व्याप्त है, जो धैर्यवान है, जिसने अपने मन को विषय - भोग के आकर्षण में उदासीन बना लिया है। जिसने इन्द्रियों के रसास्वादादि भोगों को त्याग कर उनसे उपरामता प्राप्त कर ली है, जो जन सम्पर्क से दूर एकान्तप्रेमी है, शरीर धारण करने मात्र के उद्देश्य से जो सूक्ष्म भोजन पर निर्भर रहने में सक्षम है, जिसकी अपना वाणी, अपने शरीर तथा अपने मन पर पूर्ण नियन्त्रण है, जो वैराग्य का आश्रय लेकर निरन्तर नियमित रूप से ध्यान का अभ्यास करता है, जो अपने देहजनित अहंभाव तथा काम-क्रोधादि माया के विकारों को त्यागकर ममतारहित एवं शान्त स्वभाव वाला है, वही इस ब्रह्मविद्या को पा सकता है।

इस ब्रह्मविद्या की प्राप्ति का आखिर परिणाम क्या होगा? सो इसको समझने के लिए मैं उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। एक अबोध बालक चल चित्र देखता है, उसे पर्दे पर जो भी दृश्य दिखाये जाते हैं, वह उनको सत्य मान लेता है, लड़ाई-झगड़ों के दृश्य देखकर डर जाता है, उसको उसके माता-पिता समझाते हैं कि बेटा यह सच्चे दृश्य नहीं हैं। यह तो मशीन के द्वारा फोटो के चित्रों का प्रकाश द्वारा पर्दे पर डाला जाता है। ऐसा समझाने पर बालक पिता की बात मान जाता है किन्तु उसे सन्तुष्टि नहीं मिलती, क्योंकि यह सब कैसे होता है, यह रहस्य तो उसे समझ में ही नहीं आया है। उसको पूर्णरूपेण

सन्तुष्ट तभी किया जा सकता है जब कि सिनेमा की मशीन को रोक दिया जाय और तब एक-एक फोटो को मशीन पर रखकर उसका प्रभाव दिखाया जाय। ठीक इसी प्रकार यह चित्त रूपी मशीन इन्द्रिय-पटल पर दृश्य फेंक रही है, उसी के वृत्तिसारूप्य से हम लोग इस जगत् रूपी सिनेमा को देख रहे हैं किन्तु यह सब जगत्-लीला कैसे हो रही है, इसके रहस्य से अनभिज्ञ हैं, यदि इसको पूर्णसन्तुष्टि से समझना है तो गुरुकृपा से इस चित्त रूपी मशीन को रोकना होगा और इसी क्रिया का नाम योग है—

'योगश्चित्त वृत्ति निरोधः।

इसका भी एक क्रम है कि

द्वौ क्रमौ चित्तनाशाय,
योगो ज्ञानश्च राघव।
योगोवृत्तिनिरोधश्च,
ज्ञानं सम्यक् वेदनम्॥

अर्थात् चित्त नाश के दो क्रम हैं, एक योग और दूसरा ज्ञान। चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध योग है तत्पश्चात् स्वतः ही परमतत्व का साक्षात्कार ज्ञान है। भगवान् पतंजलि ने भी निरूपण किया है कि—

तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम्।

अर्थात् वृत्तिनिरोध होते ही स्वरूप साक्षात्कार हो जाता है। इस स्वरूपस्थिति का वर्णन उपनिषदों में इस प्रकार किया है कि—

संशान्त सर्व संकल्पा,
या शिलावद्वति स्थिति।
जाग्रन्निद्राविनिर्मुक्ता,
सा स्वरूप स्थिति परा॥

अर्थात् स्वरूप स्थिति होने पर चित्त में किसी भी संकल्प या विकल्प की वृत्ति बनती ही नहीं जैसे शिला पड़ी रहती है उसी तरह निश्चेष्ट उसकी स्थिति होती है, वह स्थिति जाग्रत अवस्था स्वप्नावस्था तथा निद्रावस्था तीनों से मुक्त दिव्य स्थिति है। उस स्थिति से क्या लाभ? इस पर जगदात्मा कृष्ण समझाते हैं:

यं लब्ध्वा चापरं लाभं,
मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो नदुःखे न,
गुरुणापि विचाल्यते॥
तं विद्यात् दुखसंयोग-
वियोग योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो,
योगोऽनिर्विण्णचेतसा॥

अर्थात् ऐसी स्वरूपावस्था को पाकर वह परम लाभ मिलता है जिससे जीव कृतकृत्य हो जाता है और उसे उसके बाद कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता। उसके सभी दुखों का सदैव के लिए नितान्त अभाव हो जाता है, अतः ऐसे योग को प्रसन्नचित्त से पूर्ण निश्चय के साथ करना चाहिए। यही मानव जीवन का परम उद्देश्य है। अगले लेख में इस उद्देश्य की प्राप्ति के उपायों पर प्रकाश डाला जायगा।

## रीति रही है विधि के घर की

[ श्री नवल ]

दलने लगे पात तरुवर के, चलने लगी हवा पतझर की।
कल के श्री-पूरित वन-उपवन,
आज निरे कंगाल गए बन,
जग का अमर नियम परिवर्तन, थिर न रही गति एक प्रहर की॥
विरही के आँसू से झर-झर,
कहते पात "मिलन है नश्वर",
निर्विकार योगी सा तरुवर, इंगित करता दिशि अम्बर की॥
निरावरण हो आज विटपवर,
दिखलाता है—सत्य न सुन्दर,
शिव-शुभ-शाश्वत, बनने रुचिकर छूता दहरी आडम्बर की॥
शांति-पूर्व संघर्ष सुदुस्तर।
सिद्धि परे, उत्सर्ग प्रथम तर।
हर बसंत से पहले पतझर, रीति रही है विधि के घर की॥

( २ )

## घर में रहा न रहने वाला

[ महाकवि शङ्कर ]

खोल गया सब द्वार किसी में, लगा न फाटक-ताला।
आय निशंक अदृष्ट बली ने, घेर-घसीट निकाला॥
जाने किस पुर की बाखर में, अबकी बार बिठाला।
हा ! प्रासादिक परिवर्तन का, अटका कष्ट-कसाला॥
ढंग बिगाड़ दिया मन्दिर का, अंग-भंग कर डाला।
श्रीहत हुआ अमंगल छाया, कहीं न ओज-उजाला॥
शंकर ऐसे पर-बन्धन से, पड़े न पल को पाला।
आग लगे इस बन्दी-गृह में, मिले महा सुख-शाला॥

# मृत्यु और उस पर विजय

[ श्री पं० केशवदेव शास्त्री ]

( अथर्ववेदीय कर्मज व्याधि निरोध – )

[ ३सेक्टर ४७२/ रामपुरम नईदिल्ली ]

अथर्व का। में वर्णितजेष्ठ ब्रह्म (परम-ब्रह्म) से कनिष्ठ ब्रह्म का आविर्भाव हुआ। उन कनिष्ठ ब्रह्म ( प्रजापति ) ब्रह्मा ने सृष्टि का सृजन किया । जब समस्त लोक प्राणियों की संख्या से भर गये, और श्वांस लेने की भी बाधा उपस्थित हो गई तो ब्रह्मा जी के इन्द्रियगोल (नेत्रादि) से प्रचण्ड अग्नि उत्पन्न हो प्राणीयों को दग्ध करने लगी। उस अवस्था में महेश्वर (रुद्र) की प्रार्थना पर ब्रह्माजी ने मन और वाणी का संयमन कर क्रोधाग्नि को पुनः अपनी अन्तरात्मा में लीन कर प्रजा के जन्म-मरण की व्यवस्था हेतु 'मृत्यु' देवी का प्राकट्य किया। मृत्यु को प्रजाओं के समय-समय पर संहार का जैसे ही आदेश दिया वह बड़ी चिन्तातुर हो दुःखित मन रोपड़ी। उसने अश्रु अपने दोनों हाथों में ले लिये वे 'अश्रु' विविध रोग बन गये। वही मृत्यु प्राणियों का अन्तकाल आने पर "काम" और 'क्रोध" को प्रेरित्त करके उनके द्वारा उन्हें मोहान्धकार में डालकर मार डालती है। उपर्युक्त अश्रु ही ज्वरादिरोग मृत्यु समया-गमन में बन जाते है।

भयङ्कर शब्द करने वाला महान् बलशाली भयानक प्राण वायु ही समस्त प्राणियों का प्राण स्वरूप है। वही देहधारियों के देहों का नाश होने पर नाना प्रकार के रूपों या शरीरों को प्राप्त होता है। अतः इस शरीर के अन्दर देवाधिदेव वायु (प्राण) ही सर्व श्रेष्ठ है।

विभिन्न अङ्गों से प्राणों के उत्क्रमण का फल।

१, देह त्याग के समय यदि प्राण पैरों के मार्ग से उत्क्रमण हो तो 'परमधाम' की प्राप्ति होती है।

२. पिण्डलियों से निकले तो 'वसु' देवता के लोक को जाता है।

३. घुटनों से प्राण त्याग हों तो "साध्य" देवताओं के लोक की प्राप्ति हो।

४. गुदामार्ग से ऊर्ध्व को जावें तो 'मित्र' देवता के उत्तम लोक जाता है।

५. कटि के अग्रभाग से तो "पृथ्वी लोक, (६) दोनों जांघों से जावें तो प्रजापति लोक। (७) दोनों पसलियों से जावें तो (मरुद्गण) देवों का लोक। (८) नाभि से इन्द्रपद । (९)

घसः स्थल से 'रुद्रलोक' (१०, ग्रीवा से मुनियों में श्रेष्ठ परमउत्तम नरक का सान्निध्य। (११) मुख से निकले तो विश्वेदेवाओं के लोक। (१२) श्रोत्रों से दिशाओं का अधिष्ठात्री देवियों के (१३) नासिका से 'वायुदेवता' के (१४) नेत्रों से अग्नि देवता' के। (१५) भौहों से 'अश्विनीकुमारों' के (१६) ललाट से 'पितरों' के। (१७) मस्तक से ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है।

(म'भा.शा.प.अ. ३१७)

## मृत्यु सूचक लक्षण ज्ञान।

यह मृत्यु सूचक लक्षण 'कर्मजव्याधि-निरोध' ग्रन्थ के अध्याय २ से पृथक और विशेष है। यह केवल १ वर्ष आयु शेष रहने पर प्रगट होते हैं।

१. जो पहिले की देखी हुई 'अरुन्धती' और 'ध्रुव' नहीं देख पाता।

२. पूर्ण चन्द्र—मण्डल और 'दीपक' की शिखा दाहिने भाग से खण्डित प्रतीत हो

३. दूसरे के नेत्रों में अपनी परछाईं को न देख पाये। १ वर्ष आयु समझें।

४. बड़ी-बड़ी कान्ति भी फीकी पड़जाय (५) अधिक बुद्धिमत्ता भी मूर्खता में परिणित हो जाय। तो (६) मास आयु समझें।

(६) कालेरङ्ग का होकर पीला पड़ जावे (७) देवताओं का अनादर करे।

(८) सूर्य चन्द्र मण्डलों को मकड़ी के जाले के समान छिद्र युक्त देखे तो ७ रात्रि ही जीवित रहे। तथा देवमन्दिर में सुगन्धित वस्तुओं में भी मुर्दे की जलन जैसी दुर्गन्धि अनुभव करे। ७ दिन ही रहे।

(९) नाक, कान टेढ़े हो जावें (१०) दांत और नेत्रों का रङ्ग बिगड़ जावे (११) बेहोशी (१२) शरीर ठण्डा पड़ जावे (१३) वामनेत्र से सहसा आंसू बहने लगे (१४) मस्तक से धुवां उठने लगे तो तत्काल मृत्यु समझें।

## मृत्यु को जीतने का उपाय

मन बुद्धि, इन्द्रिय निग्रह कर निरन्तर परमात्मा का चिन्तवन करे तथा पञ्च भूत विषयक धारणा के साथ पञ्च तत्वों और उनके विषयों पर विजय प्राप्त करे। सांख्य और योग द्वारा अन्तरात्मा को परमात्मा में लगायें। शरीर धारियों की अन्तिमगति 'मृत्यु' है। काल चक्र परिवर्तनशील है, यहां की सभी वस्तुयें अनित्य हैं जीवन और शरीर जन्म के साथ ही उत्पन्न और वृद्धि तथा नाश को प्राप्त होते हैं काल से जन्म को ही पीछे से आग जलाती है। जो काल द्वारा मारा जा चुका है, वही किसी से मारा जाता है।

उस दिव्य विधाता काल का न आदि है न अन्त ही है उसी काल पर सांख्य और योग मार्गी 'मृत्यु' पर विजय प्राप्त करते हैं। काल की चर्चा आगे वर्णित है।

काल के अनेक रूप हैं वह आद्यन्त हीन प्रजा का सृष्टा, पालक, संहारक है उसी में द्वन्द्व युक्त असंख्य प्राणी स्वभाव से निवास करते हैं। उसी काल का वेद प्रत्येक युग में

सम्पूर्ण योगाङ्गों का पोषण करते हुए नियन्त्रित करते हैं।

वह ब्रह्मवेद (अथर्ववेद) के कर्मकाण्डों में गुप्त रूप से प्रतिपादित हुआ है अतः वेदज्ञ विद्वानों द्वारा भी वह अज्ञात ही रहता है। किन्तु वेदान्त में उसी ब्रह्म का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया गया है। यह "भव-व्याधि भेषज' में देखें।

## प्रभु एक बार

[ श्री राघवेन्द्र तिवारी ]

प्रभु एक बार ! वे शतदल लौटा दो
जिन पर अक्षुण्य नींद, सोया करते थे तुम
मैं निखिल-पारावर, शून्य-बाहु-पाश में,
बन्द किये शीतलता पुंज-पुंज जाता हूं
संशय के घन ! विवर, ध्वंश-मयी प्रज्ञा के वशीभूत।
और—
सुर-जाह्नवी, रोम—रोम सींच कर
मधुर—मधुर अश्रु बिन्दु, सहसा टपकाती है
तब मेरे भाग्य देव !
कोई रक्ताभ नयन, मुझ पर अव्यक्त दीठ,
देकर चुप होता है
जैसे युग—बाहु पर, जगती का पारावार
सुलह किये सोता है,
प्रभु एक बार ! वे शतदल लौटा दो !
जिन पर सारा विवर्त,
पारंपरिक होता है

गताङ्क से आगे—

# सिद्धयोगी महात्मा कबीर

[ श्री शिवरामसिंह सांगर, एस. आई. टी. टूण्डला ]

बादशाह लोधी कबीर की योग-शक्ति का अद्‌भुत परिचय पाकर जहाँ उनके प्रति अधिकाधिक श्रद्धा और आदर का भाव प्रकट करने लगा वहाँ उनका पीर तकी उनसे और अधिक द्वेष रखने लगा। ईर्षा की आग ईर्षा करने से बुझती नहीं है बल्कि वह ईर्षालु को और भी प्रबल रूप से जलाने लगती है। पीर तकी का यही हाल हुआ। वह कबीर को अपमानित करने और बादशाह की नजरों से नीचा गिराने को ही नहीं किन्तु उन्हें जान से मार डालने की नई-नई तरकीबें सोचने लगा। एक नई तरकीब उसने बादशाह को यह सुझाई कि कबीर को लोहे की जंजीरों से जकड़कर नाव में गंगाजी के बीचों बीच में ले जाकर जल समाधि लगाने को कहा जाय। अगर वह सिद्ध योगी होगा तो समाधि लगा लेगा नहीं तो हुजूर को इसके ढोंग का पता चल जायगा। बादशाह ने इस की अनुमति दे दी और कबीर को भी इसकी सूचना दे दी। नियत समय पर एक दिन कबीर को लोहे की जंजीरों से कस कर नाव में बिठाया गया और नाव को बीच गंगा की धार में जहाँ पानी सबसे गहरा था ले चलने का हुक्म मल्लाह को दिया गया। तकी ने दो जल्लाद नाव में बिठा दिये थे जो जंजीरों को थामे हुए थे। उसने यह भी इशारा जल्लादों को कर दिया था कि जब गहरे पानी के बहाव में नाव पहुँचे तब वहीं कबीर को गहरा झटका देकर डुबो दिया जाय ताकि हमेशा के लिए उसका काम तमाम हो जाय। ऐसा ही हुआ भी जब नाव गहरे पानी के बहाव पर पहुँची तब जल्लादों ने लोहे की सांकलों से कसे कबीर को उठाया और जोर के झटके के साथ कबीर को गंगा में डुबो दिया। सभी किनारे पर खड़े दर्शक इस कारुणिक दृश्य को देखकर कम्पायमान हो उठे लेकिन कबीर शान्त और मौन भाव से इस सबको सहन कर गये। इस दृश्य को देखने के लिए बादशाह स्वयं उपस्थित था। साथ ही स्वामी रामानन्द जी भी संयोग वश वहाँ पहुँच गये थे। सभी किनारे पर खड़े लोगों ने कुछ ही मिनटों के बाद देखा कि कबीर पद्मासन लगाये जल के ऊपर कमल पत्रवत् विराजमान हैं कुछ ही देर में वे किनारे पर आ गये। सबसे पहले उन्होंने अपने गुरुदेव श्री रामानन्द

को प्रणाम किया। भीड़ ने सन्त कबीर की जय के नारे लगाये। बादशाह ने कबीर के प्रति और भी अधिक आदर तथा गुरु भक्ति प्रदर्शित की तथा पीर तकी की भर्त्सना करते हुए उनसे कहा कि तुम क्यों व्यर्थ में ऐसे सन्त महात्मा को परीक्षण के नाम पर तंग करते रहते हो। लेकिन तकी फिर भी न माना। उसने मुल्लाओं और मौलवियों की मीटिंग करके बादशाह को अपने एक और षड्यन्त्र पर राजी कर लिया। बादशाह भी अपना पहला पीर होने के कारण तकी की बात टालना नहीं चाहते थे।

तय किया गया कि एक उबलते हुए तेल के कड़ाव में कबीर को बिठाकर खत्म कर दिया जाय। ऐसा ही हुआ। बादशाह और दूसरे लोगों के सामने कबीर को तेल के एक बड़े खौलते हुए कड़ाव में बिठला दिया गया। कबीर उसमें प्रसन्न मना ऐसे ही बैठे रहे जैसे मानो वे शीतल जल में बैठे हों। सभी को इस पर आश्चर्य हुआ। बादशाह ने यह सोच-कर कि कहीं यह तेल ठण्डा तो नहीं है अपनी उंगली तेल में डालनी चाही। कबीर ने चिल्ला-कर कहा—बादशाह ऐसी गलती न करना। तेल गरम है तुम्हारी उंगली जल जायगी। लेकिन बादशाह ने कहा कि जब आप इस में बैठ कर भी नहीं जलते हैं तब मेरी उंगली क्यों जल जायगी। कबीर ने कहा शहंशाह मेरी बात और है। मेरा शरीर पंच भौतिक नहीं है अपितु तेजोमय है जिसे अग्नि नहीं जला सकती। बादशाह को फिर भी यकीन न आया और उसने अपनी उंगली तेल के कड़ाव में डाल दी। वह बुरी तरह जल कर नष्ट हो गई। बादशाह वेदना के कारण बुरी तरह कराहने लगा। कबीर तेल के कड़ाव से बाहर निकले और अपने कर स्पर्श से बादशाह की उंगली की सब वेदना दूर कर उसे पहले जैसा ही कर दिया। इस यौगिक चमत्कार को देखकर बादशाह उनके प्रति और अधिक श्रद्धान्वित हुआ।

इस बार भी शेख तकी को मुंह की खानी पड़ी। जितने दिन सिकन्दर लोदी बनारस में रहे हररोज शाम को कबीर साहब का भाषण सुनने के लिये हजारों नर-नारी शाही महल में इकट्ठे होते थे। बादशाह कबीर साहब को रत्न जड़ित सिंहासन पर बिठाया करता था और स्वयं जमीन पर बैठता था। अब चूंकि बादशाह को दिल्ली से आये हुए काफी समय हो गया था। और उनका दाह रोग भी ठीक हो गया था। अतः उसने दिल्ली वापस जाने का कार्यक्रम बनाया और कबीर साहब से भी प्रार्थना की कि वे भी दिल्ली चलें ताकि जैसे यहां हमारा उद्धार किया है उसी प्रकार हमारे खानदान का भी उद्धार करें। सारी फौज को तैयार किया गया और दिल्ली जाने की तैयारी की गई। एक हाथी सजाया गया। जिस पर आगे कबीर साहब को बिठाया गया और बादशाह उनके पीछे बैठे। पहला पड़ाव त्रिवेणी घाट पर डाला गया। प्रातः स्नान

करने के बाद देखा गया कि गंगा जी में उत्तर दिशा से एक बालक का शव बहता हुआ आ रहा है। शेख तकी के मन में हर समय बदले की भावना तो रहती ही थी, उसने बादशाह से कहा कि कबीर साहब से कहिये कि बालक की लाश को यहां बुलाकर जीवित कर दें। बादशाह सिकन्दर ने कबीर साहब से प्रार्थना की कि वह जो बालक का शव बहता जा रहा है उसे आप जीवित कर दिखायें। कबीर साहब ने कहा कि बादशाह मैं तो कई चीजें दिखा चुका हूं। अब की बारी शेख तकी और उनके साथियों का है यह कार्य इन लोगों से कराइए, बादशाह के कहने पर शेख तकी और उसके साथियों ने कुरान शरीफ की बड़ी-बड़ी आयतें पढ़ी और अपने पीरो मुर्शद को भी याद किया लेकिन कुछ न बन पाया। शव आगे निकल गया, तब बादशाह ने कबीर साहब से प्रार्थना की कि यह कार्य तो आप ही कर सकेंगे अतः मेरी प्रार्थना है कि आप ही इस कार्य को करें। कबीर साहब को यह कार्य करना ही था।

क्योंकि जिस लड़की का वह शव था उससे कबीर साहब पहले ही कुछ वचन बद्ध थे। शव काफी आगे निकल चुका था, मगर कबीर साहब के दृष्टि भर कर देखने से वह पीछे की ओर उलटा लौटना शुरू हो गया, और आकर किनारे लग गया। उस शव को कबीर साहब ने सम्बोधित करके कहा। ऐ इस शव की जीवात्मा! तुम जहां कहीं भी हो आकर इसमें प्रवेश कर जाओ और कबीर के नाम पर उठ-कर खड़े हो जाओ। तत्क्षण वह बालक जीवित हो गया और कबीर अपने दोनों हाथों को उठाकर बालक के सर के नजदीक ले गये जिसमें से एक तेज ज्योति निकली और बालक के हृदय में समा गयी तथा बालक उसी समय से सर्व शक्तिमान बन गया।

बादशाह ने कबीर साहब से कहा कि— महाराज! आपने तो कमाल कर दिया। कबीर साहब ने कहा कि बादशाह तुम्हारी जबान से पहली बार 'कमाल' शब्द का प्रयोग हुआ इसलिये हमने इस बालक का नाम 'कमाल' ही रख दिया है। और यही कमाल कबीर का 'कमाल' कहलायेगा। जिस तरह से हनुमान जी भगवान राम के सबसे बड़े प्रियशिष्यों में से थे उसी तरह कमाल साहब भी कबीर साहब के सबसे ऊंचे शिष्यों में रहे। और इन्होंने कबीर साहब को मिशन का बहुत प्रचार किया है। इस बालक को जीवित करने में भी शेख तकी को मुंह की खानी पड़ी या यूं कहिये कि इस घटना ने जलती आग पर घी डालने का काम किया। बादशाह ने कबीर साहब से कहा कि महाराज आप लोग आवा-गमन व जीवन-मरण के सिलसिले को मानते हैं, तो हमें ये बतादये कि यह बालक पिछले जन्म में कौन था। कबीर साहब ने कमालकी ओर संकेत करके कहा कि- बेटा! तुम ही बताओ कि तुम पिछले जन्म में कौन थे? कमाल ने कबीर जी को प्रणाम किया और पूर्व जन्म का हाल बताना शुरू किया।

उत्तर दिशा में उत्तरा खण्ड में मेरा जन्म एक ब्राह्मण कुल में हुआ था और मेरी एक बहन थी। हम दोनों को भगवान का भजन करने का बहुत शौक था। कोई पूर्ण गुरु न मिलने की वजह से हम दोनों हिमालय में तपस्या करने चले गये। वहां कबीर साहब ने दर्शन दिये और हम दोनों को गुरु मन्त्र भी दिया। हम लोगों ने उनसे जब सत् स्वरूप आत्म-तत्व का उपदेश पूछा तो कहने लगे—समय आने पर मैं बताऊंगा। उसके बाद कुछ समय बाद मेरी मृत्यु हो गई। लोगों ने मुझे गंगा जी में बहा दिया मेरी बहन की मृत्यु मुझ से कुछ साल पहले हो गई थी। ये ही कबीर साहब जो आपके सामने हैं इन्होंने ही हमें गुरु मन्त्र दिया था और यही हमारे गुरु हैं। बादशाह ने आदमी भेज कर जो कुछ कमाल साहब ने कहा था उसकी छान बीन कराई तो पता चला कि कथित घटना बिल्कुल सच्ची घटना थी।

बादशाह ने इसके बाद त्रिवेणी घाट से दिल्ली के लिये प्रस्थान किया गया और कुछ दिनों के बाद सभी लोग दिल्ली जा पहुंचे वहां पर अलग से एक बहुत अच्छे महल में कबीर साहब की प्रवास का प्रबंध किया गया और आज्ञाकारी सेवक उनकी सेवा के लिये रख दिये गये। हर सुबह और शाम कबीर साहब का भाषण हुआ करता था। बादशाह दोनों समय इस सत्संग भाषण को सुनने के लिये उपस्थित हुआ करता था। लेकिन शेख तकी की दुश्मनी की भावना फिर भी कम न हुई। उसने दिल्ली जाकर भी कबीर साहब को अधिक तंग करना शुरू किया।

एक दिन कबीर साहब को शेख तकी के आदमियों ने उठाकर एक कुएं में डाल दिया और ऊपर से रेता भरना शुरू किया। अभी पूरा कूप रेते से भरा नहीं था कि एक आदमी भागा हुआ आया और शेख तकी से कहने लगा कि आप तो कहते हैं कि हमने कबीर साहब को कुंए में डालकर रेते से ढक दिया है किन्तु मैंने अपनी आंखों से अभी अभी देखा है कि कबीर साहब महल के आंगन में रत्न जटित सिंहासन पर बैठे हुए भाषण दे रहे हैं। शेख तकी ने खुद जाकर देखा तो बात सच निकली। सारी मेहनत व्यर्थ गई। कबीर साहब शेख तकी को देखकर कुछ मुस्कराने लगे। बादशाह ने कबीर साहब से मुस्कराने का कारण पूछा कबीर साहब ने कहा इसका जबाब आपको शेख तकी ही देंगे मैं क्या दूं। फिर शेख तकी ने सही-सही बात बादशाह को बता दी। शेख तकी ने कबीर साहब को मारने का एक और तरीका निकाला। सूखी लकड़ियों का एक भारी ढेर लगाया गया और उसके बीच में कबीर साहब को बिठा कर और आग लगादी गई। जब आग पूरे वेग से जलने लगी तब शेख तकी ने कहा एक आदमी जाओ और देख के आओ कि कबीर साहब कहीं रत्न जटित सिंहासन पर बैठ भाषण तो

नहीं दे रहे हैं। उस आदमी ने आकर शेख तकी को बताया कि कबीर साहब रत्न जटित सिंघासन पर बैठे भाषण दे रहे हैं और बादशाह सिकन्दर लोदी उनके पास बैठे हुए हैं। शेख तकी की यह चाल भी निष्फल गई। शेख तकी हैरान था कि अब करे तो क्या करे। एक आदमी ने सलाह दी कि शेख जी कबीर जी कोई जादू-मन्त्र जानते हैं। जब आदमी सो जाता है तो जादू मंत्र कुछ नहीं कर सकता इसलिये जब कबीर साहब सो जाय तब इनको मार दिया जाय। रात को जब कबीर जी सो गये तब एक जल्लाद को लेकर बादशाह पहुंचा। और हुक्म दिया कि कबीर साहब की गर्दन उड़ादो। उसने कई बार बार किया किन्तु कबीर साहब के शरीर पर कोई भी असर नहीं हुआ। जिस तरह से साया नहीं कट सकता है उसी तरह से कबीर साहब का कुछ नहीं बिगड़ सका जब इस कार्य में भी सफलता नहीं मिली तो कबीर साहब को तोप के मुंह के सामने खड़े किया गया और उसमें गोलाबारूद भर कर तोपची को हुक्म दिया कि तुम तोप के गोले से कबीर साहब को उड़ा दो। तोप-ची ने जैसे ही घोड़ा दबाया तो सारा गोला बारूद पानी बनकर तोप में से बाहर बह गया और कबीर साहब मुस्कराते हुए तोप के सामने खड़े रहे। कबीर साहब को शेख ने ५२ दफा कसौटी पर कसा और ५२ बार ही मारने की कोशिश की लेकिन कबीर साहब का वह कुछ नहीं बिगाड़ सका। एक दिन दरबार लगा था शेख तकी दरबार में आये और चूंकि वह बादशाह के पीर थे इसलिये सबने उठकर उनको सलाम किया और बादशाह ने भी सलाम किया मगर कबीर साहब ने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। शेख तकी को यह बात भी बहुत बुरी लगी और क्रोध में आकर कहने लगे कि आप अपने को खुदा कहते हैं। अगर यह सच है तो मेरी लड़की जो कुछ दिन हुए मर गई थी उसे आप "जीवित कर दें यदि वह जीवित हो गई तो मैं तो आपको खुदा मान लूंगा। कबीर ने कहा—मुझे आप खुदा माने या न माने मेरे ऊपर इसका कोई असर नहीं पड़ता। लेकिन बादशाह ने प्रार्थना कि महाराज शेख तकी अपनी बेटी को बहुत प्यार करते थे अगर वह जिन्दा हो जाये तो क्या ही अच्छा हो और शेख तकी भी आपको खुदा मानने लग जायेगा। कबीर साहब को यह काम करना था ही क्योंकि उस लड़की से भी कबीरदास कुछ वचन बद्ध थे और बादशाह ने स्वयं प्रार्थना की। अब कबीर साहब बादशाह सिकन्दर व शेख तकी और दूसरे लोगों को साथ लेकर उस कब्रिस्तान में गये जहां शेख की लड़की को दबा दिया गया था। कबीर-साहब के हुक्म से उस कब्र से सारी मिट्टी उठा दी गई और जब शव नजर आने लगा तब कबीर साहब ने कहा यह लड़की साहब के नाम पर उठकर खड़ी हो जाये। लड़की जीवित हो गई और कबीर साहब ने हाथ से छूकर उससे एक नयी ज्योति उस लड़की के अन्दर प्रवेश करा देनी दी फलतः वह लड़की भी सर्व सामर्थ्यवान

बन गई। बादशाह ने कबीर से कहा कि आपने यह दुबारा कमाल किया है। कबीर साहब ने कहा बादशाह यह कमाल नहीं कमाली है आज से इस लड़की का नाम कमाली रहेगा। शेख तकी अपनी लड़की को जीवित देखकर बहुत खुश हुवा कबीर साहब ने चाहा कि यह लड़की कुछ थोड़ा बहुत यहां भाषण दे। उस लड़की ने कहा कि हम दो भाई और बहन थे, उत्तराखण्ड में रहते थे। दैवयोग से मेरा जो भाई था वह इस वक्त मोजूद है। जिसका नाम कमाल रखा गया। हम दोनों से कबीर साहब ने सत् स्वरूप आत्म तत्व का उपदेश देने के लिये वायदा किया था। उस लड़की से कबीर साहब ने कहा कि—बेटा अब तुम अपने बाप शेख तकी के साथ अपने घर चली जाओ। कमाली ने शेख के साथ जाने से मना कर दिया और कहने लगी मेरे असली पिता तो कबीर साहब है। शेख तकी तो मुझे मिट्टी में दबाकर चले गये थे लेकिन आपने तो मुझे जीवित किया है जिन-जिन लोगों ने कबीर साहब को तकलीफें देने में सहयोग दिया था उन सब से लड़की कहा कि आप लोगों ने एक बेगुनाह संत को बेहद सताया है इसलिये यह निश्चित है कि आप लोगों का उद्धार नहीं होगा। आप लोगों का भला इसी में है कि कबीर साहब की शरण में जाओ। वे आपको माफ कर देंगे। तब संभव है कि आप लोगों का उद्धार हो जाय। हिन्दू लोग जिसको राम कृष्ण या शंकर कहते है उसी को मुसलमान रहीम या अल्लाह कहते है। चाकि एक ही है नाम अलहदा अलहदा है। कोई फर्क नहीं है। सिर्फ नाम मात्र का फर्क है। वहीं पर शेख तकी ने कबीर साहब को साक्षात् भगवान समझ कर दण्डवत् प्रणाम किया और माफी मांगकर कहने लगा कि मैं तो इतना पापी हूँ कि माफी के काबिल ही नहीं हूँ। कबीर साहब ने समझाया कि शेख तकी जो कुछ तुमने किया है इसका तुम्हें कोई पाप नहीं लगेगा क्योंकि पांच भौतिक शरीर न होने के नाते से मुझे कोई भी तकलीफ नहीं हुई अथवा आपको ५२ परीक्षाओं ने मुझे यह साबित कर दिखा दिया कि मैं खुदा हूँ। और आप लोगों ने भी इस बात को मान लिया है यदि इतना बड़ा इम्तिहान आप लोग मेरा न लेते तो आप लोगों का उद्धार होना सम्भव नहीं था। अब शेख तकी और बादशाह सिकन्दर ने बिनय पूर्वक प्रार्थना की कि महाराज हमें दीक्षा दीजिये और हमारा उद्धार कीजिये तब कबीर साहब ने दिन तिथि का विचार करके एक दिन गुरु दीक्षा का निश्चित कर दिया। सबसे पहले सिकन्दर लोदी ने दीक्षा ली फिर शेख तकी ने और उसके बाद बादशाह की बेगमों ने अमीरों-गरीबों ने दीक्षायें ली। और कबीर साहब को फूल मालाओं से लाद दिया गया। तरह-तरह की सुगन्धियों का स्तैमाल किया गया। दीक्षा तो सब लोगों ने ले ली लेकिन दीक्षा में दक्षिणा क्या दी जाय यह फैसला करना बाकी था। बादशाह सिकन्दर लोदी और बेग में सब एक

जगह बैठकर सोचने लगे कि कौन सी अमूल्य वस्तु कबीर साहब को भेंट की जाय। किसी को भी कुछ समझ नहीं आता था कि हम क्या भेंट दें और हम किस काबिल हैं जो कुछ भेंट दें। किसी ने कहा हीरे जवाहरात दिये जायें, किसी ने कहा सोना चांदी दिया जाये। लेकिन बादशाह सिकन्दर लोदी ने एक कागज का टुकड़ा गुरु दक्षिणा में कबीर साहब को भेंट किया। जिसमें लिखा हुआ था कि आज से सम्पूर्ण भारतवर्ष का राज्य गुरु दक्षिणा में भेंट कर दिया गया है अतः आज से भारत के सम्राट श्री कबीर स्वामी जी है।

सिकन्दर लोदी जैसा शिष्य होना और कबीर साहब जैसा गुरु होना बहुत ही मुश्किल है। कबीर साहब ने इतनी बड़ी जिम्मेदारी को लेने से इकार कर दिया। वे कहने लगे कि इस राज्य को तो हमारी तरफ से तुम्हीं करोगे लेकिन मैं ८ बातें तुमसे कहना चाहता हूँ अगर अमल करोगे तो तुम्हारा भी उद्धार हो जायेगा और जो हम चाहते हैं वह भी पूरा हो जायेगा। बादशाह ने कहा कि—महाराज आप जो भी कहेंगे मुझे मंजूर है। कबीर साहब ने निम्नलिखित ८ बातें बादशाह के आगे रखकर उनसे स्वीकृति प्राप्त करली।

(१) जो हिन्दुओं के मंदिर तोड़ दिये गये हैं और उनकी जगह मस्जिदें बन-वादी गईं उन मन्दिरों को फिर से बन-वाया जायगा और घंटा बादन पर जो प्रतिबंध लगा है वह हटा दिया जाय।

(२) जिन हिन्दू राजाओं के राज्य जबर-दस्ती छीन लिये गये है उन्हें आदर पूर्वक लौटा दिये जाय।

(३) हिन्दुओं के घरों में घुसकर जो मुसलमान बलात्कार से उन्हें भ्रष्ट करते हैं उन्हें बल पूर्वक बन्द करा दिया जाय।

(४) हर आदमी को अपने धर्म के अनुसार धर्म पालन करने की इजाजत हो। सरकार उसमें टांग न अड़ाये।

(५) हिन्दू स्त्री पुरुषों को मुसलमान लोग बहुत सताते हैं और बलात्कार से मुसलमान बनाते है। इन अत्याचारों से इन्हें रोका जाये।

(६) साधु, ब्राह्मण, तिलक, तथा यज्ञो-पवीत आदि का जो यवन लोग अपमान करते हैं वह भूलकर भी नहीं होना चाहिये और राज्य कर जो हिन्दुओं पर ज्यादा लादा गया है उसे कम कर दिया जाय उतना ही हो जितना मुसलमानों पर है।

(७) जीव हिंसा नहीं होनी चाहिये। सदा अहिंसा धर्म का पालन होना चाहिये कोई भी किसी व्यक्ति या जानवर का पीड़ा न पहुँचाये।

(८) हिन्दु जाति के ऊपर जो अत्या-चार मुसलमानों के हो रहे हैं उन्हें बल-पूर्वक तुरन्त बन्द किया जाय।

कबीर साहब कुछ दिन और दिल्ली में रहे जब तक वे रहे खुद भी प्रचार करते रहे और कमाल और कमाली ने भी प्रचार जब

सब शर्तें जो बादशाह से मनवाई थीं पूरी हो गईं तब वापिस काशी आने का इरादा किया। बादशाह और शेख तकी ने कुछ दिन और रहने के लिये आग्रह किया था किन्तु सबके देखते ही देखते कबीर साहब रत्न जटित सिंहासन पर बैठे हुए ही अन्तर्धान हो गये और काशी पुरी में अपने गुरु महाराज श्री स्वामी रामानन्द जी के स्थान पर प्रकट हो गये। तब स्वामी रामानन्द जी ने कबीर साहब को गले से लगाया और कहा कि जितनी सेवा हिन्दू धर्म की तुमने की है उतनी किसी और ने नहीं की।

वस्तुतः कबीर एक ऊँचे सिद्धयोगी थे इसी-लिए वे सारी प्राणघातक परीक्षाओं में खरे उतर सके।

अपने योगबल से कबीर साहब ने हिन्दू समाज का जो भला किया उसका दूसरा उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता।

## योगरूपी विवेक बुद्धि

जब योगरूपी विवेक बुद्धि मिल जायगी तो यह सभी पढ़ने-पढ़ाने एवं विचार-विमर्श की परेशानी एकाएक जाती रहेगी। तब दिल चाहेगा ही नहीं कि एक भी पन्ना उलटे या एक बात का भी खोद-विनोद करें। जैसे पका फल डालसे अकस्मात् अलग हो जाता है, वैसे ही ये सभी बातें दिल से हट जाती हैं या दिल ही इनसे अलग हो जाता है। वह इन्हें पूछता भी नहीं। इसी को निर्वेद या वैराग्य कहा है।

जब मन या दिल विरागी बन गया तो फिर वेदशास्त्र के हजार तरह के वचनों के करते जो बुद्धि की परेशानी थी, बेकली और बेचैनी थी उस पर भी पर्दा पड़ जाता है, वह भी आप ही आप जाती रहती है मिट जाती है। जैसे कोई आदमी बड़ी परेशानी में चारों ओर दौड़-धूप करता-कराता तबाह हो, मगर अन्देशे या परेशानी के मिटते ही शान्त हो जाय और सुखकी सांस ले। ठीक वही हालत बुद्धि की हो जाती है। उसकी सारी दौड़-धूप बन्द हो जाती है। हमेशा के लिये वह निश्चल एवं निश्चिन्त बन जाती है।

—स्वामी सहजानन्द सरस्वती

# सद्‌गुरु का संगी और उसका कर्त्तव्य

[ ब्रह्मचारी श्री रघुराज सिंह ]

—❀❀❀—

ब्रह्मानन्दं परम सुखदं,
केवलं ज्ञान मूर्तिम् ।
द्वन्द्वातीतं गगन सदृशं,
तत्त्व मस्यादि लक्ष्यम् ।।
एकं नित्यं विमल मचलं,
सर्वधी साक्षि भूतं ।
भावातीतं त्रिगुण रहितं,
सद्गुरुं तं नमामि ।।

अर्थ—मैं उन वाणी के अगोचर, सत्व, रज, तम गुणों से रहित भगवान् सद्गुरुदेव को नत मस्तक प्रणाम करता हूँ जो साक्षात् ब्रह्म आनन्द स्वरूप, दिव्य सुख प्रदाता एवं समस्त ज्ञान की मूर्ति हैं। वे सुख दुख से परे रहते हुए अखिल ब्रह्माण्ड में आकाश के समान ओत-प्रोत (व्यापक) हैं जो (तत्वमसि) आदि वेदान्त महा वाक्यों का लक्ष्य हैं। जो सदा अद्वितीय, नित्य एक रस मल विक्षेपादि से रहित ध्रुव कूटस्थ और समस्त बुद्धि जीवियों की बुद्धि के साक्षात् द्रष्टा हैं।

सद्गुरु तत्त्व का यथार्थ ज्ञान सद्गुरु कृपा से ही होता है। ऐसे सर्व साधारण मनुष्य जो प्रच्छन्न रूप से अज्ञान रूपी रोग से ग्रस्त हैं उन्हें अपनी संकीर्ण क्षुद्र बुद्धि के द्वारा सद्गुरु तत्त्व की महानता के नापने तौलने का दुस्साहस कभी नहीं करना चाहिए।

जिन्होंने उन महान की महिमा को जाना है वह अपनी बुद्धिमत्ता का अभिमान छोड़-छोड़कर यही स्तुति करते हैं कि—

सोई जाने जिन देहु जनाई, और जान लेने का महान फल भी प्रत्यक्ष बता देते हैं कि जानत तुमहि तुमहि होय जाई, उन सत्पुरुष के महान महिमा युक्त, गुरुत्व का दर्शन निश्छल भाव से अतिनिकटवर्ती होने पर ही होता है।

क्योंकि निकटवर्तिता के कारण ही महान पुरुषों के आचरण के पीछे अन्तरंग भाव का स्पष्ट ज्ञान होता है। और उनके अंतरंग सद्-भावों के पीछे अन्तःकरण की विशालता में महान ज्ञान का गुरुत्व प्रतिष्ठित है, जिसे कोई भी जिज्ञासु गम्भीरता एवं स्थिरता की दृष्टि से देख सकता है परन्तु यह स्थिरता भी गुरुदेव की ही देन है जो स्वेच्छाचारी होकर रहते हैं, वह तो सदा पतनोन्मुख ही दिखाई देते हैं। स्वच्छन्द होकर चलने वालों को यह बात ध्यान में रख लेनी चाहिए कि स्वच्छन्द तत्त्व का योग लाभ कर लेने पर ही कोई स्वच्छन्द होकर चल सकता है। योगी गुरु से मिले बिना जो स्वच्छन्द चेष्टा करता है उसका उत्थान

नहीं हो सकता । इस स्वेच्छाचारिता रूपी दोष के कारण ही अनेकों जिज्ञासु सद्गुरु के संग में आते हुए भी उनका सदुपदेश नहीं समझ पाते। यदि कोई समझते भी हैं तो तदनुसार आचरण में नहीं ला पाते । कदाचित् कोई आचरण में भी बर्तते हैं तो सत्य लक्ष्य पर दृष्टि रखते हुए अधिक दूर चल नहीं पाते। और लक्ष्य को भूलकर इधर-उधर भटक जाते हैं क्योंकि सद्गुरु की आज्ञा पालन में सतत जागरूक भाव से तत्पर नहीं रहते । सद्गुरु की समीपता में भी जिज्ञासु योग्यता के अनुसार ही लाभ उठा पाते हैं ।

जिन जैसा सत संग किया,
वैसा ही फल लीन ।
कदली सीप भुजंग मुख,
एक बूंद गुण तीन ॥

जो जिज्ञासु साधक सद्गुरु देव जी की आज्ञा में कटिबद्ध तत्पर होकर चलते हैं वही उनके सदुपदेशों को सावधानतया सुनते हैं, जो सुनते हैं, वही यथार्थ रूप से मनन करते हैं जो मनन करते हैं, वही चिन्तन में अभ्यस्त होते हैं, और जहां चिन्तन का अभ्यास दृढ़ है वहीं निरन्तर ध्यान सिद्ध दिखाई देता है। जहां ध्यान है वहीं ध्येय से तन्मयता लाभ होती है, वहीं पर पूर्ण योग सिद्ध होता है । जो सद्गुरु का संगी है वही असत् सज्ञाभिमान से रहित होता है और सत् स्वरूप का ज्ञानी होता है। ऐसा ज्ञानी अपने नित्य सत्य सम्बन्ध को जानता है वह उसी के विषय में कहता है, उसी के विषय में सुनता है केवल उसी को सर्वत्र देखता है। वह उसके विरुद्ध पर पदार्थ को अपना नहीं मानता पर पदार्थ के विषय में चर्चा नहीं करता न सुनता न दृष्टि रखता। उसकी यह दशा रहती है कि—

सुनत न काहू की कही,
कहत न अपनी बात ।
नारायण के रूप में,
मगन रहत दिन रात ॥

सद्गुरु का संगी हठी, दुराग्रही नहीं होता बल्कि सरल और विनयी होता है। आलसी प्रमादी नहीं होता बरन् कर्त्तव्यपरायण और यथार्थदर्शी होता है। चंचल असक्त नहीं होता प्रत्युत स्थिर और पुरुषार्थी होता है। उत्तेजित एवं अधीर नहीं होता बल्कि वह गम्भीर धैर्यवान होता है। रागी द्वेषी नहीं होता बल्कि वह त्यागी और प्रेमी होता है। बद्ध तथा दुखी नहीं होता क्योंकि वह मुक्त और आनन्दमय परम तत्त्व आत्मा का अनुभव करता है। वह विचार रहित मूर्खों का स्वामी न बनकर सत्पुरुषों का सेवक बन कर रहता है इस प्रकार सत्पुरुषों की भक्ति में वास्तविक गुरुत्व का प्रकाश होता है। संसार की भोग-कामनाओं का नाश होता है, और हृदय में स्थाई शान्ति का निवास होता है। श्री गुरुदेव की आज्ञा का आराधन ही धर्मयुक्त तप है जिसकी श्रद्धा शुद्ध सात्त्विक होती है वही आज्ञा का पालन कर

सकता है गुरुदेव की भक्ति पूर्ण होने पर परमात्मा की भक्ति अनायासही सिद्ध हो जाती है।

जिसे परम शान्तिप्रद ज्ञान एवं परमानन्द प्राप्ति की अभिलाषा हो उसे श्री गुरुदेव की आज्ञानुसार चलना चाहिए। अपनी इच्छा से तो चलते हुए जीव को न जाने कितने जन्म अज्ञान दशा में भटकते बीत गये परन्तु शाश्वत शान्ति न मिली। श्री सद्गुरु की समीपता में सत्संग रूपी भोजन मिलते रहने से आध्यात्मिक जीवन उसी प्रकार शक्ति सम्पन्न होता है जिस प्रकार अन्न, जल आदि भोजन मिलने से स्थूल शरीर पुष्ट होता है। साधक में जब आध्यात्मिक अंश बलवान होता है तभी इन्द्रिय दमन व मनोनिरोध में सफलता मिलती है। इस परिवर्तनशील, विनाशी जगत में सद्वस्तु का बोध प्राप्त करना प्रत्येक प्राणी मात्र का कर्त्तव्य है यद्यपि यह अति सुगम है और उसकी प्राप्ति सर्वत्र हो सकती है। बल्कि हर समय वह प्राप्त ही है फिर भी उसके परिचायक ज्ञान स्वरूप गुरुदेव जब तक नहीं मिलते तब तक उसका बोध होना कठिन है।

मनुष्य इस संसार में परम शान्ति प्राप्त करने के लिए और दुखद बन्धनों से छूटने के लिए अनन्त कर्मों को करता हुआ जीवन व्यतीत कर रहा है परन्तु गुरुदेव की आज्ञा आराधन रूपी एक कर्म का आश्रय लिए बिना न तो परम शान्ति ही प्राप्त कर पा रहा है न दुखद बन्धनों से छुटकारा ही मिल पा रहा है। जिस एक कर्म के करने से अनन्त कर्मों के बन्धन अनायास ही खुल जाते है वह एक कर्म यही है कि श्री सद्गुरुदेव की आज्ञा से ही करणीय कर्मों को पूरा किया जाय। परम विनय भाव के साथ गुरुदेव की आज्ञाओं का पालन करने से ही जिज्ञासु के मन में छिपे हुए स्वेच्छाकारिता रूपी भयानक दोष की निवृत्ति होती है।

## अन्न का प्रभाव

अन्न ही बनावे मन, मन जैसी इन्द्रियां हों।
इन्द्रियां से कर्म कर्म भोग भुगवाते हैं।
अन्न ही से वीर क्लीव, क्लीव वीर होते देखे,
अन्न के प्रताप योगी भोगी बन जाते हैं॥
अन्न ही के दूषण से तामसी ले जन्म जीव,
अन्न की पवित्रता से देव सिद्ध आते हैं।
मृत्युलोक से है जब मोक्ष और बन्धन का,
वेद आदि तत्व मूल ही बताते हैं॥

—श्री ब्रह्म कवि